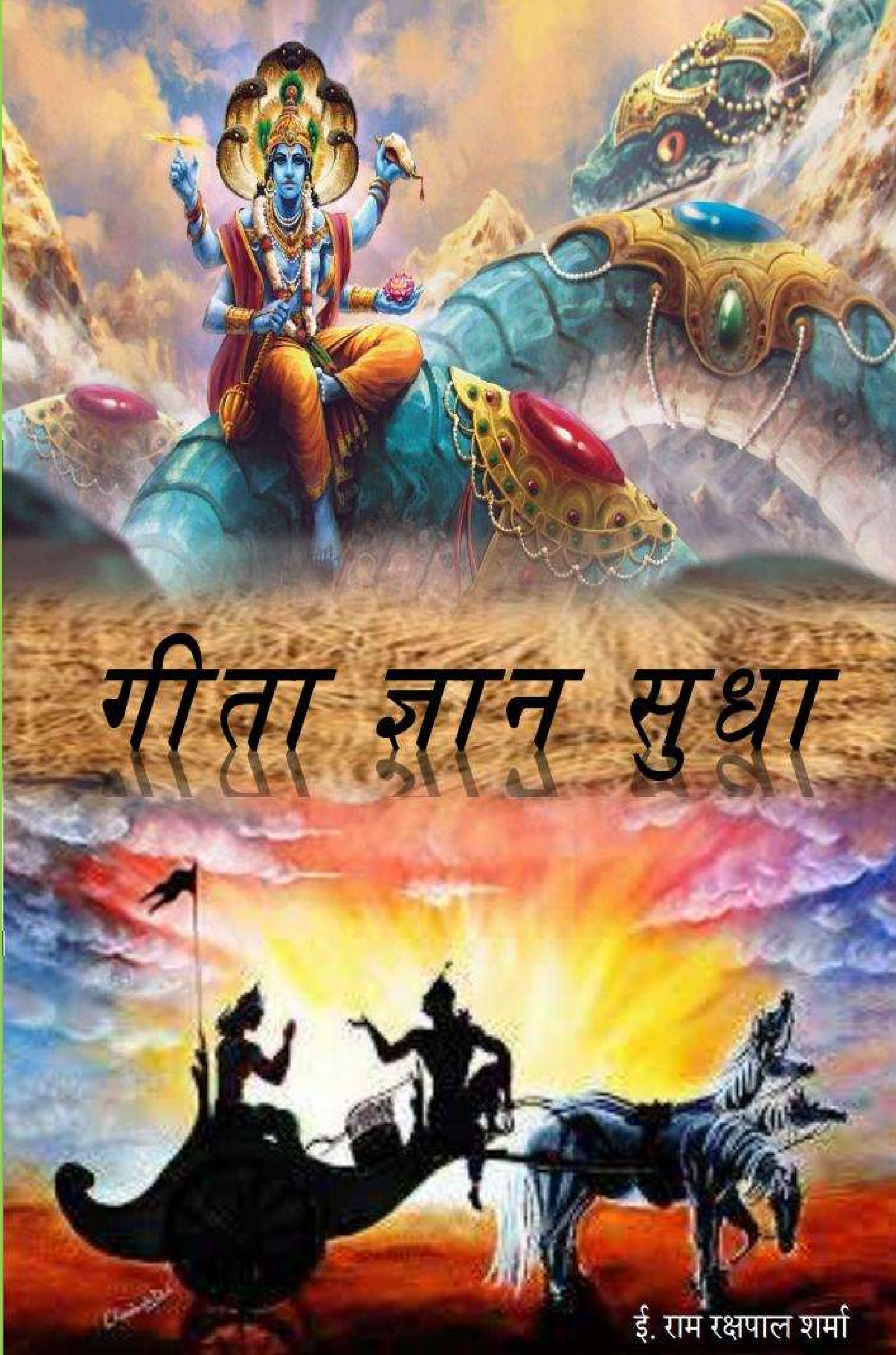

गीता ज्ञान सुधा

ई. राम रक्षपाल शर्मा

गीता ज्ञान सुधा

गीता ज्ञान सुधा

लेखक:
राम रक्षपाल शर्मा

ReadTree International

गीता ज्ञान सुधा

©राम रक्षपाल शर्मा

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or reprinted in any form by any means without the prior written consent of its writer and publisher except for the purpose of references.

प्रथम प्रकाशन: 2022

ISBN: 978-81-957671-5-1
मूल्य रु. 200.00

Disclaimer:
The opinions/ views expressed in this book are solely of the author and do not represent the opinions /standings/ thoughts of ReadTree International.

Published & printed in India by:
ReadTree International, Ludhiana (Pb.)-141010
website-https://readtreeinternational.com
Email- readtreeinternational@gmail.com
Ph +91-6284313722

प्रथम प्रणाम-भगवान वेद व्यास जी

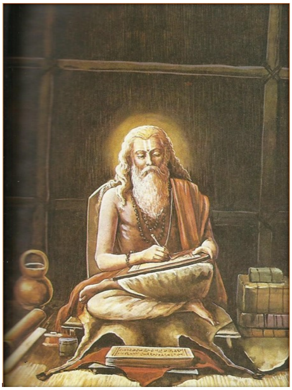

चित्र 1: भगवान वेद व्यास जी

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता 4/34)

तत्त्वज्ञान को तत्त्वदर्शी ज्ञानियों से, समझ उनकी सेवा करने से।
उपदेश करेंगे उस ज्ञान का, भलीभाँति दंडवत करने से।।

श्रद्धा सुमन

आप हैं और रहेंगे सदा सर्वदा हमारी यादों में।
इस लोक में न सही रहेंगे संस्कारों में।।

प्रात:स्मरणीय पंडित नौबत राम सारस्वत जी मेरे अत्यंत आदरणीय सम्बन्धी रहे हैं। मेरा सर्व प्रथम परिचय वर्ष 1956 में हुआ जब मैं मात्र 12 वीं कक्षा का छात्र था। ये उस समय अध्यापन कार्य कर रहे थे। इनकी विशेषता जो लेखक को प्रभावित कर गयी वह इनका रहन सहन और आध्यात्मिक ज्ञान था, जिससे लेखक को आगे चल कर जीवन में लाभ ही लाभ मिला। इस प्रकार के व्यक्ति अप्रतिम विचार धारा वाले होते हैं। वर्ष 1913 में इस धरा पर आये तथा वर्ष 2017 में, 104 वर्ष की आयु में ब्रह्म में विलीन हो गए। ये सरल स्वभाव के थे। नित्य अपने आराध्य भगवान से वार्तालाप करना इनकी दिनचर्या में सम्मिलित था। ये संत प्रकृति के थे। इनके कितने ही शिष्य, पौत्र एवं धेवते उच्च पदों पर भारत और विदेशों में जन सेवा में लगे हैं। यह पुस्तिका उनकी प्रेरणा पाकर लिखी गयी है, अत: उन्हीं को समर्पित है।

प्राक्कथन

भारतवर्ष, जिसे बड़े प्रेम भाव एवं आदर सहित आर्यावर्त नाम से सम्बोधित किया जाता था, वह कालांतर में विदेशी आतताइयों के चंगुल में फंस कर अपनी मातृ भाषा संस्कृत को त्यागकर अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी इत्यादि भाषाओं के मिश्रित चंगुल में फंस कर रह गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि हम लोग संस्कृत भाषा से अलग-थलग होकर उसके प्रयोग से इतने भयभीत हैं कि गीता का एक आधा श्लोक पढ़ने में भी झिझकते हैं और स्वयं को असमर्थ अनुभव करते हैं। लगभग 6 वर्ष पूर्व सम्पूर्ण गीता महाकाव्य का काव्यानुवाद पाठकों की सेवार्थ प्रस्तुत किया गया था। श्री गीता जी और संत तुलसी दास जी के राम चरित मानस के समान स्थलों का भी उल्लेख किया था। उससे न्यूनाधिक जागृति आई है। जीवन यापन में सदुपयोग हेतु लगभग 3 वर्ष पूर्व इसी अध्यात्मिक प्रयास में 'तमसोमाज्योतिर्गमय' पुस्तिका द्वारा भी पाठकों को गीता का रसास्वादन कराया गया। यह सब अनमोल रत्न गीता जी के अथाह सागर से निकाल कर पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये गये। लेखक की धारणा यह है कि वाक्पटुता से जो कुछ अच्छा बुरा गृहण किया जाता है वह स्थायी प्रभाव वाला नहीं होता, परन्तु जो पढ़ लिखकर ग्रंथों के अध्ययन से गृहण करके समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है उसका प्रभाव स्वयं और समाज पर देर सबेर पड़ता ही है। इसी क्रम में यह अगला प्रयास गीता जी के प्रत्येक श्लोक का केवल भाषानुवाद प्रस्तुत पाठकों के लिए सरल अध्ययन हेतु प्रस्तुत है। यदि कोई लाभ समाज को मिला तो लेखक अपना प्रयास सफल समझेगा।

श्री मद्भगवद्गीता – एक परिचय:- इसे साधरणतया गीता ही कहकर पुकारते हैं। वेदों के रचयिता भगवान स्वयं हैं। गीता भी भगवान कृष्ण के मुखारविंद से निकली है। अर्जुन ने महाभारत युद्ध में जब विपक्ष में अपने परिवार वालों को लड़ने के लिए तैयार देखा तो यह देख कर उसने स्वयं को अपने ही सगे संबन्धियों के साथ लड़ने के लिए किंव्कर्तव्यविमूढ पाया तब भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के उपदेशों के रूप में अर्जुन के अज्ञान को नष्ट किया। तब अर्जुन ने युद्ध लड़ना स्वीकार किया तथा अपने पक्ष अर्थात्

पाण्डवों को विजय दिलाई। गीता वेदों का सार है, जिसने गीता को मन लगा कर पढ़ लिया और समझ लिया तो मानो उसने अपना जन्म सुधार कर भगवान के चरणों में जाने का मार्ग प्रशस्त कर लिया। गीता में अठारह अध्याय हैं। संक्षेप में विवरण इस प्रकार है-

अध्याय संख्या	**विषय**	**श्लोकों की संख्या**
प्रथम	अर्जुन विषाद योग	47
द्वितीय	सांख्य योग	72
तृतीय	कर्म योग	43
चतुर्थ	ज्ञान कर्म संन्यास योग	42
पंचम	कर्म संन्यास योग	29
षष्टम	आत्म संयम योग	47
सप्तम	ज्ञान विज्ञान योग	30
अष्टम	अक्षरब्रह्म योग	28
नवम	राजविद्या राजगुह्य योग	34
दशम्	विभूति योग	42
एकादश	विश्वरूप दर्शन योग	55
द्वादश	भक्ति योग	20
त्रयोदश	क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग	34
चतुर्दश	गुणत्रय विभाग योग	27
पंचद्शो	पुरषोत्तम योग	20
षोडसो	देवासुर सम्पदा विभाग योग	24
सप्तदशो	श्रद्धात्रय विभाग योग	28
अष्टादश	मोक्षसंन्यास योग	78
कुल श्लोक	**योग**	**700**

अनुक्रमाणिका

भगवान वेद व्यास जी -प्रथम प्रणाम **i**

श्रद्धा सुमन **ii**

प्राक्कथन **iii**

1 आध्यात्मिक तथ्य **2**

1.1 शरीर 2

1.2 आत्मा 2

1.3 जीवात्मा 2

1.4 परमात्मा 4

1.5 तत्त्व ज्ञान 4

2 गीता का तात्पर्य **5**

3 श्री मद्भगवद्गीता जी की महिमा **6**

4 श्री मदभगवद्गीता महा काव्य: गीता की पृष्ठ भूमि **9**

5 प्रथम अध्याय-अर्जुन विषाद योग **13**

6 द्वितीय अध्याय -सांख्य योग **17**

7 तृतीय अध्याय -कर्मयोग **23**

8 चतुर्थ अध्याय -ज्ञान कर्म संन्यास योग **28**

9 पंचम अध्याय- कर्म संन्यास योग **34**

10 षष्ठ अध्याय -आत्म संयम योग **38**

11 सप्तम अध्याय -ज्ञानविज्ञान योग **43**

12 अष्टम अध्याय-अक्षर ब्रह्म योग **46**

13 नवम अध्याय-राजविद्या राजगुह्य योग **50**

14 दशम अध्याय-विभूति योग **54**

15 एकादश अध्याय -विश्वरूप दर्शन योग **58**

16 द्वादश अध्याय -भक्ति योग **64**

17 त्रयोदश अध्याय -क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग **67**

18	**चतुर्दश अध्याय** -गुणत्रय विभाग योग	**72**
19	**पंचदश अध्याय** -पुरुषोत्तम योग	**75**
20	**षोडश अध्याय** -देवासुर सम्पद विभाग योग	**79**
21	**सप्तदश अध्याय** -श्रद्धात्रय विभाग योग	**82**
22	**अष्टादश अध्याय** -मोक्ष संन्यास योग	**85**
	श्री मदभगवद्गीता के सारगर्भित एवं सर्वप्रिय श्लोक काव्यानुवाद सहित	**97**
	आरती भगवद्गीता	**100**

चित्र सूची

1 भगवान वेद व्यास जी i

1.1 ईश्वर दर्शन 3

3.1 श्री कृष्ण अर्जुन संवाद 6

4.1 भगवान श्री कृष्ण 9

5.1 धृतराष्ट्र संजय संवाद 14

8.1 श्री कृष्ण द्वारा सूर्य को गीता उपदेश का उद्धरण 28

9.1 श्री कृष्ण द्वारा कर्म संन्यास योग का वर्णन 35

12.1 भगवान का समग्र रूप 47

13.1 श्री कृष्ण अर्जुन गूढ़ संवाद 52

14.1 श्री कृष्ण द्वारा योग विद्या के रहस्य का वर्णन 54

15.1 श्रीकृष्ण द्वारा विराट भगवत्स्वरूप का दर्शन कराना 59

19.1 अश्वत्थ वृक्ष के रूपक से संसार का वर्णन 76

20.1 श्री कृष्ण का अर्जुन को मूल मंत्र 80

22.1 मनुष्य जीवन चक्र 85

22.2 श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन की शंकाओं का निवारण 87

आध्यात्मिक तथ्य

1.1 शरीर

शरीर का स्वरूप – पाँच महाभूत आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी का सूक्ष्म भाव

पाँच ज्ञानेनिंद्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच इंद्रियों के विषय – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, मन, बुद्धि, अहंकार तथा मूल प्रकृति (24 तत्त्व)

ज्ञानेन्द्रियाँ – श्रोत्र (कान), त्वचा, नेत्र, रसना (जिह्वा), घ्राण (नासिका)।

कर्मेन्द्रियां- वाक, हस्त, पाद तथा गुदा।

1.2 आत्मा

इंद्रियों को स्थूल शरीर से परे यानि श्रेष्ठ बलवान और सूक्षम कहते हैं। इंद्रियों से परे मन है, मन से भी परे बुद्धि है और बुद्धि से भी जो अत्यंत परे है, वह आत्मा है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥गीता 3/42 ॥

1.3 जीवात्मा

इस संसार में नाशवान और अविनाशी भी दो प्रकार के पुरुष हैं इनमें सम्पूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो नाशवान और जीवात्मा अविनाशी कहा गया है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ गीता 15/16 ॥

चित्र 1.1: ईश्वर दर्शन

1.4 परमात्मा

उत्तम पुरुष तो अन्य ही है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है एवं अविनाशी, परमेश्वर और परमात्मा इस प्रकार कहा जाता है।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥गीता 15/17 ॥

1.5 तत्त्व ज्ञान

ईश्वरीय संबंधी ज्ञान, कर्म, ज्ञान आत्मा जीवात्मा, परमात्मा, उपासना, आत्मोद्दारक उपाय इत्यादि विषयों का सम्पूर्ण ज्ञान।

श्री मद्भगवद्गीता महाभारत महाकाव्य के 13 वें भीष्म पर्व के पच्चीसवें अध्याय से बयालीसवें अध्याय तक कुल 18 अध्याय ही हैं जिनमें भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को नाना प्रकार की आज्ञाएँ तथा उपदेश दिये हैं। यही 18 अध्यायी ग्रंथ श्री मद्भगवद्गीता नाम से प्रसिद्ध है।

गीता का तात्पर्य

गीता ज्ञान का अथाह समुद्र है, इसके अंदर ज्ञान का अथाह भंडार भरा पड़ा है। अत: विचार करने पर प्रतीत होता है की गीता का मुख्य तात्पर्य अनादि काल से अज्ञान वश संसार –समुद्र में पड़े हुए जीव को परमात्मा की प्राप्ति करवा देने में है और इसके लिए गीता में ऐसे उपाय बतलाए गए हैं, जिनसे मनुष्य अपने कर्तव्य कर्मो का भली भांति आचरण करता हुआ ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। गीता में परमात्मा की प्राप्ति के लिए दो प्रकार की निष्ठाओं का प्रतिपादन किया गया है। वे दो निष्ठा हैं – योग निष्ठा यानि कर्म योग और ज्ञान निष्ठा यानि सांख्य योग। इन दोनों ही मार्गों में ज्ञान कर्म व भक्ति का समावेश किया गया है।

1. **योग निष्ठा अर्थात कर्मयोग** : सब कुछ भगवान का समझ कर सिद्धि असिद्धि में समभाव रखते हुए, आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग करके भगवत-आज्ञानुसार सब कर्मों का आचरण करना।

2. **ज्ञान निष्ठा यानि सांख्य योग** : सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णा के जल की भांति अथवा स्वप्न की सृष्टि के सदृश मायामय होने से माया कार्यरूप सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरतते हैं –इस प्रकार समझ कर मन, इंद्रिय और शरीर द्वारा होने वाले समस्त कर्मों में कर्तापन के अभिमान से रहित होना तथा सर्व व्यापी सच्चिदानंद परमात्मा के स्वरूप में एकीभाव से नित्य स्थित रहते हुए एक परमात्मा के सिवा अन्य किसी के भी अस्तित्व का भाव न रहना। यही ज्ञान निष्ठा अर्थात सांख्य योग अथवा कर्मसन्यास है। यह भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविंद से निकली हुई वाणी है। इसके संकलन कर्त्ता श्री व्यास जी हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने उपदेश का कितना ही अंश तो पद्यों में ही कहा था, जिसे व्यास जी ने ज्यों का त्यों रख दिया। कुछ अंश जो उन्होने गद्य में कहा था, उसे व्यासजी ने स्वयं श्लोक बद्ध कर लिया, साथ ही अर्जुन, संजय एवं धृतराष्ट्र के वचनों को अपनी भाषा में श्लोक बद्ध कर लिया और इस सात सौ श्लोकों के पूरे ग्रंथ को अठारह अध्यायों में विभक्त करके महाभारत के अंदर मिला लिया, जो आज हमें इस रूप में उपलब्ध है।

श्री मद्भगवद्गीता जी की महिमा

चित्र 3.1: श्री कृष्ण अर्जुन संवाद

1. गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरेः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख्पद्माद्विनिःसृता।। महा. भीष्म पर्व।

कर्त्तव्य है जन मानस का पठन पाठन गायन श्रवण गीता जी का।
निकली है यह स्वयं प्रभु मुख से अन्य शास्त्र की आवश्यकता क्या।।

2. गीताश्रयेऽहम् तिष्ठामि गीता मे चोत्तमम् गृहम्।
गीता ज्ञानमुपाश्रित्य त्रिल्लोकान् पालयाम्यहम्।। वाराह पुराण।।

रहते हैं प्रभु गीता के साये में गीता ही प्रभु का धाम है।
गीता ज्ञान के सहारे लोक पालन प्रभु का काम है।।

3. सर्व शास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरि।
सर्व तीर्थमयी गंगा सर्व वेद्मयो मनु।महा. भीष्म पर्व।।

सब शास्त्र निहित हैं गीता में देवाधिदेव प्रभु हैं।
निहित हैं सब तीर्थ गंगा में वेदों के वेद मनु हैं।।

4. गीता गंगा च गायत्री गोविंदेति हृदि स्थिते।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते।। महा. भीष्म पर्व।।

गीता गंगा गायत्री गोविंद जिसने हृदय में धरे।
वह जीव चारों को पाकर पुनर्जन्म में न परे।।

5. मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने।
सुकृद्गीताम्भसि स्नानं संसार मलनाशनम्।।

होता है तन निर्मल जल में स्नान करने से।
होता अंतस्तल निर्मल गीता हृदयांगम करने से।।

6. सर्वोपनिषादो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

मानो सब उपनिषदों को कपिला, दोग्धा नन्द गोपाल हैं।
वत्स प्यारे अर्जुन, गीतामृत पीते सखा- गोपाल हैं।।

7. भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य च।
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम्।।

महाभारतामृत मथ कर कृष्ण ने निकाल गीता सार उससे।
हवन कर दिया कृष्ण ने मुख में सखा अर्जुन के।

8. गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।
नैवं सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च।।

प्राणायाम और गीता अध्ययन नित्यप्रति करते हैं जो।
सभी पाप इस जन्म और पूर्व जन्मो के नष्ट करते हैं वो।।

9. गीताशास्त्रमिदम् पुण्यम् यः पठेत्प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः।।

प्रेम और भक्ति सहित गीताशास्त्र को पढ़ते हैं जो।
दूर होते भय शोकादि पाते हैं निस्संदेह प्रभु को वो।।

श्री मदभगवद्गीता महा काव्य: गीता की पृष्ठ भूमि

चित्र 4.1: भगवान श्री कृष्ण

लेकर मन में प्रासंगिक विचार धीरे धीरे बढ़ता हूँ।
श्रीमद्भगवदगीता की अविरल धारा में बहता हूँ।1।

तेरहवाँ है भीष्म पर्व महाभारत काव्य का।
कृष्ण – अर्जुन संवाद जिसमें 25 से 42 तक का।2।

पृष्ठ भूमि गीता की मन मेरे में बसती है।
कारण युद्ध कौरव पांडव यह लिखती है।3।

किया आयोजन इंद्रप्रस्थ में पांडवों ने यज्ञ का।

यथोचित किया सम्मान पांडवों ने कौरवों का।4।

आयोजन देख पांडवों का द्वेषाग्नि में कौरव जल उठे।
नीचा दिखाने हेतु इनको ताना बाना बुनने लगे।5।

बुला भेजा युधिष्ठर को जुआ खिलाने के लिए।
हार गए सर्वस्व ये शून्य हुए अस्तित्वके लिए।6।

जुए में हारने से सर्वस्व इन का चला गया।
हाय रे! ये क्या हुआ राजा से रंक बना दिया।7।

गिडगिड़ाए पांडव तो इन को यह विकल्प दिया।
वनवास बारह वर्ष तेरहवाँ अज्ञातवास दिया।8।

तेरहवें वर्ष में पांडव यदि अज्ञात रहेंगे।
राज्य इनको वे तुरंत वापिस कर देंगे।9।

पूरी होने पर शर्त राज्य देने का वादा किया।
सफल हुए राज्य मांगा तो ठेंगा दिखा दिया।10।

होकर सफल सोचा पांडवों ने राज्य मिलेगा।
पर नहीं पता था भाग्य में धक्के लिखा था।11।

कहा दुर्योधन ने राज्य के लिए युद्ध करना होगा।
जीतेगा दोनों में जो उसे ही पूरा राज्य मिलेगा।12।

पाँच गाँव ही दे दें पांडवों ने अनुरोध किया।
सुई की नोक भर भी नहीं देंगे, नकार दिया।13।

विकल्प शेष युद्ध था सत्ता पाने के लिए।
छटपटाये पांडव सहायता पाने के लिए।14।

शेष थी अभी साख इनकी मित्रों ने सहारा दिया।
सेनाएँ आने लगीं बिगुल युद्ध का बज गया।15।

पहुंचे द्वारिका दुर्योधन सहायता कृष्ण से पाने को।
पीछे पीछे अर्जुन भी भाग्य अपना आजमाने को।16।

घमंडी था दुर्योधन कृष्ण उसे सोते मिले।
सिरहाने जा बैठा सोचा पहले हम मिले।17।

था अर्जुन तो भक्त कृष्ण का चरणों में जा बैठा।
अच्छा हुआ कृष्ण ने अर्जुन को पहले देखा।18।

कृष्ण के जागने पर दोनों ने अभिवादन किया।
आने का कारण भी दोनों ने बतला ही दिया।19।

चाहिए सहायता युद्ध में दोनों ने अनुरोध किया।
सहायता दोनों की करूंगा कृष्ण ने उत्तर दिया।20।

सेना दूँगा एक को दूसरी ओर केवल सारथी रहूँगा।
देखा पहले अर्जुन को विकल्प पहले इससे लूँगा।21।

सहायता हेतु अर्जुन ने कृष्ण निहत्थे ही मांगे।
कृष्ण ने हाँ कर दी अर्जुन के भाग्य जागे।22।

कहा दुर्योधन ने मुझे नारायणी सेना दे दें।
क्या करूंगा निहत्था कृष्ण मुझे विदा कर दें।23।

पाकर आश्वासन कृष्ण का दोनों वापिस लौट गए।
इधर सुना व्यास जी ने वे भी हस्तिनापुर आ गए।24।

कुरुक्षेत्र में इस प्रकार सेनाएँ एकत्र होने लगीं।
दस अक्षोणी कौरवों को पांडवों को सात मिली।25।

देना चाहते थे धृतराष्ट्र को व्यास जी दिव्य दृष्टि।
कर दिया मना बिलकुल, लेने को यह दिव्य दृष्टि।26।

अंधे थे यद्यपि, बोले नहीं चाहता देखना।
खून खराबा दोनों का मेरे अपनों का।27।

अपने बजाय संजय को दिव्य दृष्टि दिलवा दिया।
सुनने को हाले युद्ध संजय को पास बैठा लिया।28।

हो गया आरंभ युद्ध का महाभारत नामकरण हुआ।
वीर हताहत होते रहे युद्ध सामान्य चलता रहा।29।

सातवें दिन भीष्म के गिरने का समाचार सुना।
हिल गए धृतराष्ट्र संजय को आदेश दिया।30।

प्रथम अध्याय-अर्जुन विषाद योग

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥गीता 1/1॥

धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया - धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र में मेरे और पान्डुपुत्रों ने क्या किया? इस पर संजय ने उत्तर दिया -राजा दुर्योधन ने पांडवों की व्यूहाकार सेना को देखकर आचार्य द्रोण के पास जाकर यह वचन कहा –आचार्य! पांडवों के सेनापति और आपके बुद्धिमान शिष्य द्रुपद पुत्र धृष्टधुम्र द्वारा रचित सेना को देखिए। इनकी सेना में बड़े- बड़े धनुष वाले तथा भीम और अर्जुन के समान शूरवीर सात्यकि, राजा विराट, महारथी द्रुपद धृष्टकेतु, चेकितान तथा बलवान काशिराज, पुरुजित कुन्तिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैव्य, पराक्रमी युधामन्यु, बलवान उत्तममोजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु तथा द्रोपदी के पांचो पुत्र, ये सभी महारथी हैं। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हमारे पक्ष में भी जो प्रधान प्रधान नायक हैं उनको भी बतलाता हूँ -आप स्वयं, भीष्म पितामह, कर्ण, संग्राम विजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही आपके पुत्र अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा और भी मेरे लिए जीवन की आशा छोड़े हुए अनेक प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित युद्ध में सबके सब चतुर हैं।

भीष्म पितामह द्वारा रक्षित हमारी यह सेना सब प्रकार से अजेय है और भीम द्वारा रक्षित पांडवों की सेना जीतने में सुगम है अत: आप सब लोग अपने अपने स्थानों पर रहकर सब और से पितामह भीष्म की रक्षा करें। इसके पश्चात कौरवों में वृद्ध पितामह ने दुर्योधन के हृदय में हर्ष उत्पन्न करते हुए सिंह जैसी आवाज करते हुए शंख बजाया।इसके पश्चात नगाड़े ढोल मृदंग, नरसिंघे आदि बाजे एक साथ बजे वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ।

चित्र 5.1: धृतराष्ट्र संजय संवाद

तत्पश्चात श्वेत घोड़ों से युक्त उत्तम रथ में बैठे हुए श्रीकृष्ण महाराज ने और अर्जुन ने भी अलौकिक शंख बजाये।श्रीकृष्ण महाराज ने पांचजन्य नामक, अर्जुन ने देवदत्त नामक, भयानक कर्म करने वाले भीम ने पौण्ड्र नमक शंख बजाया, कुन्तीपुत्र युधिष्ठरने अनंत विजय नामक शंख और नकुल और सहदेव ने सुघोष और मणि पुष्पक शंख बजाये।

श्रेष्ठ धनुष काशिराज और महारथी शिखंडी, धृष्टधुम्र विराट, अजेय सात्यिकी राजा द्रुपद एवं द्रोपदी के पांचों पुत्र बड़ी भुजा वाले सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु इन सभी ने अलग अलग शंख बजाये।

उस भयानक शब्द ने आकाश और पृथ्वी को गुंजायमान करते हुए धृतराष्ट्र अर्थात् आपके पक्ष वालों के हृदय विदीर्ण कर दिए। इसके बाद कपि ध्वज अर्जुन ने मोर्चे पर डटे हुए आपके पक्ष वालों को देखते हुए शस्त्रास्त्र चलने की तैयारी के समय हृषिकेश कृष्ण महाराज से कहा कि रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिए। जब तक मैं

युद्ध-क्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी इन विपक्षी योद्धाओं को भली प्रकार देख लूं कि इस युद्ध रूप व्यापार में मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना योग्य है और दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध में हित चाहने वाले जो-जो राजा लोग इस सेना में आये हैं इन युद्ध करने वालों को मैं देखूंगा।

इसके पश्चात् अर्जुन ने दोनों सेनाओं में ताऊ, चाचाओं, दादा, परदादों, गुरुओं, मामों और भाइयों को देखा। इस प्रकार सम्पूर्ण बंधुओं को देखकर शोक युक्त करुणा से युक्त कुंतीपुत्र अर्जुन ने यह वचन कहा -हे कृष्ण! युद्ध क्षेत्र में उपस्थित इन अपने सम्बन्धियों के समुदाय को देखकर मेरे समस्त अंग शिथिल हुए जा रहे हैं मुख सूखा जा रहा है शरीर में कम्पन और रोमांच हो रहा है। गांडीव हाथ से गिर पड़रहा है, त्वचा में बहुत जलन हो रही है तथा मैं इस समय खड़ा होने की स्थिति में नहीं हूँ। हे केशव! मैं लक्षणों को भी विपरीत देख रहा हूँ तथा युद्ध में स्वजन समुदाय को मार कर अपना कल्याण भी नहीं देखता, क्योंकि जिनके लिए हमें राज्य भोग और सुखादि चाहिए ये सब धन और जीवन की आशा को त्याग कर युद्ध में खड़े हैं। गुरुजन, ताऊ, चाचे, लड़के, दादा, मामे, ससुर, पुत्र, साले तथा अन्य जो संबंधी लोग हैं, मुझे मारने पर भी अथवा तीनों लोकों के राज्य के लिए भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता फिर पृथ्वी के राज्य की तो बात ही क्या है। हे जनार्दन! कौरवों को मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी इन आतताइयों को मार कर हमें पाप ही लगेगा अत: हे माधव! अपने ही बांधव ध्रतराष्ट्र के पुत्रों को मारने के लिए हम योग्य नहीं हैं क्यों कि अपने ही कुटुंब को मार कर हम कैसे सुखी होंगे

यद्यपि ये लोभ से भ्रष्ट चित्त हुए कुल के नाश से उत्पन्न दोष को, मित्रों से द्रोह करने वाले पाप को नहीं देखते हैं।हमें तो इन उपरोक्त दोषों को जानते हुए इस पाप से हटने के लिए विचार करना चाहिए। कुल के नाश से सनातन कुल धर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्म के नष्ट होने पर सर्वत्र कुल में पाप भी बहुत फ़ैल जाता है तथा पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ अत्यंत दूषित हो जाती हैं तथा इनके दूषित हो जाने से वर्णसंकर उत्पन्न होता है तथा वर्णसंकर कुल को नरक में ले जाता है। लुप्त हुई पिंड और जल की क्रिया अर्थात श्राद्ध से वंचित इनके पितृ लोग भी नरक को प्राप्त होते हैं। इन वर्णसंकर दोषों से कुलघातियों के कुल धर्म और जाति धर्म भी नष्ट हो जाते हैं। अर्जुन शोक करते हुए कहते हैं कि हम बुद्धिमान होते हुए भी राज्य और सुख के लोभ से इस महान पाप अर्थात् स्वजनों को मारने के लिए उद्यत हुए हैं।

अत: यदि मुझ शस्त्र विहीन और युद्ध न करने वाले को धृतराष्ट्र के पुत्र मारें तो यह भी मेरे लिए कल्याणकारी ही होगा। संशय वाला, शोक ग्रस्त अर्जुन यह कहकर धनुष बाण को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।

इति श्री प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय -सांख्य योग

संजय धृतराष्ट्र से बोले – अश्रुपूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले अर्जुन से भगवान मधुसूदन ने यह वचन कहा- हे अर्जुन! तुम्हें असमय यह मोह किस हेतु प्राप्त हुआ है यह न तो श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण योग्य है, न स्वर्ग को देने वाला है और न तुम्हारी कीर्ति को बढ़ाने वाला है। हे अर्जुन! तुम में यह नपुंसकता उचित नहीं है हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को त्याग कर युद्ध करने को खड़ा हो।

अर्जुन ने उत्तर दिया -हे मधुसूदन! मैं युद्ध में गुरु द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह से किस प्रकार युद्ध करूंगा, क्योंकि ये दोनों ही मेरे लिए पूज्यनीय हैं, अत: इन महाभावों गुरुजनों को मारने से तो मेरे लिए इस लोक में भिक्षा का अन्न ग्रहण करना कल्याण कारक है क्योंकि इन गुरुजनों को मारकर मैं रुधिर से सने अर्थ- कामरूप भोगों को ही भोगूंगा।

हम यह भी नहीं जानते की युद्ध करना या न करना इन दोनों में हमारे लिए क्या श्रेष्ठ है अथवा हमें यह भी नहीं मालूम कि युद्ध में हम जीतेंगे या वे हमको जीतेंगे तथा जिन्हें मार कर हम जीना नहीं चाहते वे धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने युद्ध करने को खड़े हैं।

कायरता रूप दोष से घिरे स्वभाव वाला, धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूं जो मार्ग मेरे लिए कल्याणकारी हो उसे मेरे लिए कहिये क्योंकि मैं आपकी शरण में आया हुआ हूँ तथा आपका शिष्य हूँ, कारण कि मैं उस उपाय को नहीं देखता हूँ जो भूमि निष्कंटक धन धान्य सम्पन्न राज्य और देवताओं के स्वामी पन को पाकर भी मेरी इन्द्रियों को सुखाने वाले शोक को दूर कर सके।

संजय बोले - हे राजन! ऐसा कहकर निद्रा को जीतने वाला अर्जुन श्री गोविन्द भगवान से 'युद्ध नहीं करूंगा' यह कहकर चुप हो गया, इसके पश्चात उस विषाद युक्त अर्जुन को सेनाओं के बीच में हँसते हुए से श्री कृष्णभगवान ने यह वचन कहा - हे अर्जुन! तू न शोक करने वालों के लिए शोक करता है और पंडितों जैसा भाषण करता है परन्तु पंडित जन न तो मृत्यु को प्राप्त व्यक्तियों के लिए और न जीवित व्यक्तियों के लिए शोक करते हैं, न तो ऐसा ही है की किसी काल में मैं नहीं था, तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि आगे के कालों में हम सब नहीं रहेंगे।

जैसे जीवात्मा के इस देह में बालकपन, युवावस्था तथा वृद्धावस्था होती है वैसे ही समय आने पर अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, इस विषय में धीर पुरुष विचलित और मोहित नहीं होता है। हे कुन्तीपुत्र! इन्द्रियों के विषयको सुख देने वाले संयोग तो उत्पत्ति और विनाश वाले हैं, ये सब अनित्य हैं इन्हें तो सहन करना पड़ता है तथा जिस पुरुष श्रेष्ठ को ये सब व्यथित नहीं करते अर्थात् वह इन सब में समान रहता है, ऐसा धीर पुरुष मोक्ष के योग्य होता है और हे अर्जुन! असत् की तो सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है इस प्रकार इन दोनों का भाव तत्त्व ज्ञानियों द्वारा देखा गया है तदनुसार अविनाशी तो उसको जान कर जिससे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, इस अविनाशी का विनाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है और इस अविनाशी अप्रमेय नित्य स्वरूप जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान कहे गए है, इसी लिये हे भारत वंशी अर्जुन! तू युद्ध कर और जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है, तथा मरने वाला मानता है वे दोनों ही नहीं जानते कि यह आत्मा न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।

यह आत्मा न तो किसी काल में जन्मता है और न मरता है और न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है। क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मरता है। हे प्रथा पुत्र अर्जुन! जो इस आत्मा को नाश रहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है वह पुरुष कैसे किसको मारता अथवा मरवाता है?

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्र धारण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर नये शरीरों को प्राप्त करता है। और हे अर्जुन! इस आत्मा को न तो शस्त्र ही काट सकते हैं, इसको आग नहीं जला सकती, न ही जल गला सकता है और न ही वायु इसे सुखा सकती है। यह आत्माअछेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है और निस्संदेह अशोष्य है। यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है, यह

आत्मा अव्यक्त है अचिन्त्य है विकार रहित है। इससे हे अर्जुन! आत्मा को ऐसा जानकार तुझे शोक करना उचित नहीं है किन्तु यदि तू इस आत्मा को जन्म वाला और मरने वाला मानता है तो भी शोक करने के योग्य नहीं है क्योंकि जन्म हुए की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म निश्चित है, इससे बिना उपाय वाले विषय में तू शोक करने के योग्य नहीं है।

और हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जन्म से पहले भी अप्रकट अर्थात् बिना शरीर वाले थे और मरने के बाद भी अप्रकट हो जायेंगे बीच में ही प्रकट हैं ऐसी स्थिति में शोक क्या करना है। और हे अर्जुन! कोई एक महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की भाँति देखता है, दूसरा कोई आश्चर्य पूर्वक बताता है, कोई आश्चर्य से सुनता है, परन्तु कोई सुनकर भी इसे नहीं जानता। यह आत्मा सब प्राणियों के शरीरों में सदा ही अवध्य है इसीलिए इस विषय में तेरा शोक करना उचित नहीं है। अपने क्षत्रिय धर्म को देखते हुए भी तेरा भय करना उचित नहीं है, क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्म युक्त युद्ध से बढ़ कर कुछ भी नहीं है। हे पार्थ! स्वर्ग रूपी इस प्रकार के खुले हुए युद्ध के द्वार को कठिनता से भाग्यवान क्षत्रिय ही पाते हैं।

अतः यदि तू इस धर्म रूपी संग्राम को नहीं करेगा तो अपनी स्वयं की कीर्ति को खो कर पाप को ही ग्रहण करेगा तथा तेरी अपकीर्ति का सब लोग बहुत काल तक कथन करते रहेंगे तथा यह अपकीर्ति माननीय पुरुष के लिए मरने से भी बढ़कर है तथा जो लोग तुझे पहले सम्मान की दृष्टि से देखते थे, उनकी दृष्टि में तू बहुत ही लघुता को प्राप्त होगा क्योंकि वे तुझे भय के कारण युद्ध से भागा हुआ मानेंगे। तेरे सामर्थ्य की निंदा करते हुए तुझे बहुत से न कहने योग्य वचन कहेंगे। इससे बढ़कर अधिक दुख तेरे लिए और क्या होगा? यदि तू युद्ध में वीर गति को प्राप्त होगा तो तुझे स्वर्ग की प्राप्ति होगी अथवा युद्ध को जीत कर पृथ्वी का राज्य भोगेगा। अतः कौन्तेय! तू युद्ध करने का निश्चय करके खड़ा हो। जय-पराजय, सुख-दुःख, लाभ -हानि को समान समझने से तुझे कोई पाप नहीं लगेगा।

हे पार्थ! यह बुद्धि तेरे लिए ज्ञान योग के विषय में कही गयी है अब आगे तू कर्म योग के विषय में सुन, जिसे सुन कर तू समस्त कर्म बन्धनों को काट देगा। इस कर्मयोग में आरम्भ का कोई नाश नहीं है। इस कर्मयोग का थोड़ा सा भी साधन मृत्यु के भय से रक्षा कर देता है। हे अर्जुन! इस कर्मयोग में निश्चयात्मक बुद्धि एक ही होती है तथा अस्थिर विचार वाले सकाम पुरुषों की बुद्धियाँ निश्चय ही अनन्त और बहुत भेदों वाली होती हैं।

हे अर्जुन! जो मनुष्य भोगों में लगे हुए हैं तथा कर्मफल के प्रशंसक हैं जिनकी बुद्धि में स्वर्ग ही परम प्राप्य वास्तु है और जो स्वर्ग से बढ़कर दूसरी किसी वस्तु को नहीं मानते हैं वे अविवेकी मनुष्य जिस पुष्पित शोभायुक्त वाणी को कहते हैं, जो जन्म कर्मफल द्वारा देने वाली है तथा भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए बहुत सी क्रियाओं को बताने वाली है उस वाणी के द्वारा जिनका चित्त हर लिया गया है तथा जो भोग और ऐश्वर्य में अत्यंत आसक्त हैं, ऐसे पुरुषों की परमात्मा में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है।

हे अर्जुन! वेद तो तीन गुण सात्त्विक, राजसी तथा तामसी के कार्य रूप समस्त भोगों और उनके साधनों का प्रतिपादन करने वाले हैं, इसीलिए तू उन भोगों के साधनों में आसक्ति न रख। हर्ष, शोक आदि द्वन्दों से रहित नित्य वस्तु परमात्मा में स्थित होकर योग-क्षेम को न चाहता हुआ स्वाधीन अंतःकरण वाला हो अर्थात् निष्काम आसक्ति रहित कर्म कर। क्योंकि सब और से जल से परिपूर्ण जलाशय के मिल जाने पर जैसे छोटे जलाशय में मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है परमात्मा को तत्त्व से जानने वाले ब्राह्मण का समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है।

कर्मयोग का स्वरूप

तेरा कर्म करने में अधिकार है, उसके कर्म फल में कभी नहीं। इसीलिए तू कर्मफल का हेतु न बन तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। हे धनंजय! तू अनासक्त होकर सिद्धि-असिद्धि को त्यागकर समान बुद्धि वाला होकर कर्म कर। समत्व ही योग कहलाता है। बुद्धि योग अर्थात् निष्काम कर्मयोग से सकाम कर्म करने वाले अत्यंत निम्न श्रेणी के हैं, इसीलिए तू सम बुद्धि की ही शरण में जा। क्योंकि फल की इच्छा रखने वाले अत्यंत दीन हैं। सम बुद्धि युक्त पुरुष पाप और पुण्य को इसी लोक में त्याग देता है।

अत: तू समत्व योग में लग जा यह समत्व योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्म बन्धनों से छूटने का उपाय है क्योंकि सम बुद्धि युक्त ज्ञानी जनकर्म फलों को त्यागकर जन्म रूप बन्धनों से मुक्त होकर निर्विकार परम पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं। हे अर्जुन ! जिस काल में तेरी बुद्धि इस मोह रूपी दल-दल को पार कर लेगी, तू उस काल में सुने हुए और सुनने योग्य भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जाएगा। अनेकों प्रकार के वचनों को सुनने से विचलित तेरी बुद्धि जब ब्रह्म में स्थिर और अचल होकर ठहर जायेगी तो तू योग को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् परमात्मा से नित्य संयोग हो जायेगा।

अर्जुन ने प्रश्न किया- हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त स्थिर बुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?

उसके पश्चात श्री भगवान बोले- हे अर्जुन! जिस काल में यह पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है उस काल में वह स्थित -प्रज्ञ कहलाता है। वह दुखों की प्राप्ति में उद्विग्न नहीं होता, सुख की प्राप्ति में निस्पृह है। जिसके राग भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं ऐसा पुरुष स्थिर बुद्धि कहा जाता है और जो पुरुष सर्वत्र स्नेह रहित हुआ शुभ-अशुभ वस्तु को पाकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है।

कछुआ जैसे सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है वैसे ही यह पुरुष इन्द्रियों को इंन्द्रियों के विषय से जब पूर्ण रूप से हटा लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है। यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा विषयों के ग्रहण न करने से पुरुष के विषय तो नष्ट हो जाते हैं आसक्ति नहीं जाती पर इस स्थिर बुद्धि पुरुष की आसक्ति भी परमात्मा के साक्षात्कार से निवृत्त हो जाती है। हे अर्जुन! आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथ स्वभाव वाली अर्थात् जिद्दी इन्द्रियाँ बुद्धिमान पुरुष के मन को भी बलात हर लेती हैं।

इसी लिए सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मेरे परायण हुआ मेरे (परमेश्वर) के ध्यान में बैठे, क्यों कि जिसकी इन्द्रियाँ वश में होती हैं उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। विषयों का चिंतन करने से पुरुष की उनमें आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना होती है तथा कामनाओं में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से अत्यंत मूढ़ भाव उत्पन्न होता है, मूढ़ भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है तथा स्मृति

के नाश से बुद्धि अर्थात् ज्ञान का नाश हो जाता है। बुद्धि नाश से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है, परन्तु जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में की हुई हैं तथा इस प्रकार उसका अंतःकरण उसके वश में है वह राग द्वेष से मुक्त हुआ विषयों में विचरण करता हुआ अंतःकरणकी प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

इस प्रकार अंत: करण की प्रसन्नता से उस पुरुष के सम्पूर्ण दुखों का अभाव अर्थात् नाश हो जाता है, ऐसे प्रसन्न चित्त कर्म योगी की बुद्धि सब और से हट कर परमात्मा में भली भाँति स्थिर हो जाती है। न जीते हुए मन और इन्द्रियों वाले पुरुष में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है। उस अयुक्त के मन में ईश्वरीय भावना भी नहीं होती है। भावना रहित पुरुष को शान्ति नहीं मिल सकती है तथा अशांत पुरुष को सुख कहाँ से मिल सकता है? क्योंकि जैसे जल में चलने वाली नाव को वायु हर लेती है इसी प्रकार विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों में मन जिस इन्द्रिय के साथ में रहता है वह एक ही इन्द्रिय उस अयुक्त पुरुष की बुद्धि को हर लेती है। अत: जिस पुरुष की इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं उसी की बुद्धि स्थिर है।

सब प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है स्थित प्रज्ञ योगी उस रात्रि में परमानंद की प्राप्ति में जागता है और जिस नाशवान सुख की प्राप्ति में सब प्राणी जागते हैं वह परम तत्त्व को जानने वाले योगी के लिए रात्रि के समान है। जैसे सब और से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए नाना नदियों के जल उस में समा जाते हैं वैसे ही सब भोग, जिस स्थित प्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं वही पुरुष शान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।

क्योंकि कामनाओं को त्याग कर जो पुरुष ममता रहित, स्प्रहा रहित अहंकार रहित होकर विचरता है वही शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! यह स्थिति परमात्मा को प्राप्त पुरुष की है जिसे पाकर वह कभी मोहित नहीं होता तथा अंतकाल में इसी ब्राह्मी स्थिति में रहते हुए परमानंद को प्राप्त हो जाता है।

इति श्री द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय -कर्मयोग

अर्जुन बोले - हे जनार्दन! यदि कर्म की अपेक्षा आपको ज्ञान अधिक उत्तम मान्य है तो मुझे भयंकर कर्म योग में किस कारण से लगाते हैं? तथा मिले जुले वचन कहते हैं जिससे मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही है इसीलिए निश्चित कर एक बात कहिये जिससे मेरा कल्याण होवे।

श्री भगवान बोले -हे निष्पाप! मेरे द्वारा दो प्रकार की निष्ठासाधन की परिपक्व अवस्था इस लोक में बतायी गयी हैं -योगियों की निष्ठा कर्मयोग से तथा सांख्य योगियों की निष्ठा ज्ञानयोग से होती है।क्योंकि मनुष्य न तो कर्मों को आरम्भ किये बिना कर्मयोग यानी योग निष्ठा को प्राप्त होता है और न ही कर्म के त्याग मात्र से सांख्य योग सिद्धि को प्राप्त होता है।

टिप्पणी: कर्मयोग :- फल और आसक्ति को त्याग कर भगवत आज्ञा के अनुसार केवल भगवदर्थ समत्व बुद्धि से निष्काम कर्म करना -इसे बुद्धि योग, कर्म योग, तदर्थ कर्म, मत्कर्म, मदर्थ कर्म कहते हैं।

सांख्य योग : सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरतते हैं ऐसा समझ कर मन शरीर इन्द्रियों द्वारा किये गए कार्यों में कर्त्तापन के अभिमान से रहित होकर सर्व व्यापी सच्चिदानंद घन परमात्मा में स्थित रहने का नाम ज्ञानयोग है इसी को सांख्य योग, संन्यास, नामों से कहा जाता है।

निस्संदेह बिना कर्म किये कोई भी मनुष्य किसी भी काल में किसी भी क्षण बिना कर्म किये नहीं रहता क्योंकि समस्त मनुष्य प्रकृति द्वारा उत्पन्न गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने को बाध्य किया जाता है; इसीलिए समस्त इन्द्रियों को बलात् रोक कर जो अज्ञानी पुरुष मन से विषयों का चिंतन करता है वह पुरुष केवल दिखावा करता है, तथा

पाखंडी कहा जाता है। किन्तु हे अर्जुन! जो मन से इन्द्रियों को नियंत्रित करके अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करता है वही श्रेष्ठ है। अत: तू शास्त्र के अनुसार कर्म कर। कर्म न करने से कर्म करना श्रेष्ठ है, क्योंकि बिना कर्म किये शरीर निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

यज्ञ के लिए किये जाने वाले कर्म के अतिरिक्त दूसरे कर्म करने से मनुष्य- समुदाय कर्मों में बंधता है इसीलिए तू अनासक्त भाव से यज्ञ के लिए ही कर्तव्य कर्म कर।

यज्ञ से अभिप्राय :-साधारणतया मनुष्य जो भी शुभ या अशुभ कर्म करता है उसका फल भोगने के लिए उसे कर्मानुसार नाना योनियों में जन्म लेना होता है और बार-बार संसार में आना, जन्म लेना और मरना होता है; इसीलिए सकाम कर्मों से पाप या पुण्य के फल स्वरूप वह कर्मों द्वारा बंधता है अत:मनुष्य को कर्म बंधन से मुक्त होने के लिए निष्काम भाव से अनासक्त भाव से कर्म करना चाहिए यही यज्ञार्थ कर्म करने का अभिप्राय है।

क्योंकि यज्ञ सहित प्रजा को रचकर ब्रह्मा ने कल्प के आरम्भ में उनसे कहा -इस यज्ञ के द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त हो तथा यह यज्ञ तुम्हें इच्छित भोगों को देने वाला हो। इस यज्ञ के द्वारा तुम लोग देवताओं को उन्नत करो तथा देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार एक दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग कल्याण को प्राप्त हो जाओगे। तुम लोगों को यज्ञ के द्वारा देवता बिना मांगे ही इच्छित भोग देंगे। देवताओं को दिए बिना जो उन भोगों को भोगता है वह चोर ही है। कारण यह है कि यज्ञ से बचे हुए भाग रूपी अन्न को जो लोग सेवन करते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं परन्तु जो केवल शरीर पोषण के लिए ही पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं।

विशेष :निष्काम कर्मफल की इच्छा से और परमात्मा को समर्पित किया गया कर्म ही यज्ञ है। अपनी सामर्थ्य के अनुसार लोक कल्याण के लिए दान आदि देकर भरण पोषण करना ही सब पापों से मुक्त होना है।

समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है, वर्षा यज्ञों से होती है, यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होता है, कर्मों की उत्पत्ति वेद से होती है, वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं इससे स्पष्ट है कि परम आत्मा परमेश्वर ही सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित है।

हे पार्थ! इस लोक में प्रचलित सृष्टि चक्र के अनुसार जो मनुष्य नहीं बरतता वह इन्द्रियों के भोगों में रमण करने वाला पापायु व्यर्थ में ही जीता है परन्तु जो मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर चुका है ऐसा पुरुष सांसारिक प्रपंचों में नहीं पड़ता तथा सर्वदा परमात्मा में ही संतुष्ट रहता है वही आत्मा में संतुष्ट है। उसके लिए संसार में कोई कर्तव्य शेष नहीं है क्योंकि उस महान पुरुष का इस संसार में कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। न ही उसे कोई भी कर्म से प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियों में न ही उसका कोई स्वार्थ रहता है क्योंकि वह तो परमात्मा की तरह अनासक्त होकर सबके लिए समान भाव रखकर बरतता है, इसीलिए तू अनासक्त होकर सदा कर्तव्य कर्म कर।

क्योंकि आसक्ति से रहित कर्म करता हुआ पुरुष परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।उदाहरणके लिए जनक आदि ज्ञानी जन आसक्ति रहित कर्मों के द्वारा ही परम सिद्ध परमात्मा को प्राप्त हुए हैं अत: लोक कल्याण के लिए भी तेरा कर्म करना अर्थात् युद्ध करना उचित है क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करते हैं अन्य जन भी उनका अनुसरण करने लगते हैं तथा आगे भी वे महापुरुषों द्वारा छोड़े गए प्रमाण के आधार पर बरतने लगते हैं। प्रमाण के लिए मुझ परमात्मा को ही देख। मेरे लिए तीनों लोकों में न तो कोई कर्तव्य है और न ही कोई प्राप्त करने योग्य कोई ऐसी वस्तु है जो मुझे न मिल सकती हो, तो भी मैं कर्म में ही बरतता हूँ क्योंकि यदि मैं सावधान हुआ कर्म में न बरतूं तो बड़ा बवंडर मच जाये तथा मनुष्य भी कर्म करना छोड़ मेरा अनुसरण करने लग जाएं, अतः यदि मैं कर्म न करूं तो सब मनुष्य नष्ट भ्रष्ट हो जाएं और मैं संकरता का करनेवाला बनूँ।

कर्म में आसक्त हुए अज्ञानी जन जिस प्रकार कर्म करते हैं अनासक्त विद्वान लोक कल्याण के लिए इच्छुक उसी प्रकार कर्म करें तथा परमात्मा के स्वरूप में स्थित हुए ज्ञानी जन को चाहिए की वह शास्त्र विहित कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम न उत्पन्न करें। शास्त्र विहित कर्म भली-भाँति करता हुआ उनसे भी वैसे ही करावे और हे अर्जुन! सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं परन्तु मूढ़ पुरुष जो अहंकार से मोहित हैं वे समझते हैं की मैं करता हूँ, परन्तु हे महा बाहो! गुण कर्म विभाग और कर्म विभाग को तत्त्व से जानने वाला ज्ञान योगी समस्त गुण ही गुणों में बरतते हैं ऐसा जानकार उनमें आसक्त नहीं होता।

गुणविभाग: त्रिगुणात्मक माया अर्थात् प्रकृति के कार्य रूप पांच महा भूत, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, अग्नि, मन, बुद्धि, अहंकार तथा पांच ज्ञानेंद्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ और शब्दादि पाँच विषय –कुल २३

कर्म विभाग: उपरोक्त की परस्पर चेष्टाओं का नाम कर्म विभाग है।
प्रकृति के गुणों से मोहित हुए मनुष्य उपरोक्त गुणों में आसक्त रहते हैं उन असमझ व्यक्तियों को पूर्ण रूप से समझने वाला ज्ञानी विचलित न करे, इसलिए हे अर्जुन! तू मुझ परमात्मा में लगे हुए चित्त द्वारा सब कर्मों को मुझ को अर्पण करके आशा रहित, ममता रहित और संताप रहित होकर युद्ध कर।

जो मनुष्य श्रद्धा सहित, दोष दृष्टि रहित होकर मेरे इस मत का अनुसरण करते हैं वे सब बन्धनों से छूट जाते हैं, परन्तु जो मनुष्य मुझ में दोषारोपण करते हुए मेरे मत के अनुकूल नहीं चलते हैं उन अज्ञानी मूर्खों को तू सब ज्ञानों में मोहित और नष्ट हुए जान। सब प्राणी अपने-अपने स्वभाव के वश में हो कर कर्म करते हैं। ज्ञानवान भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है तो फिर इसमें किसी का हठ क्या करेगा? इसीलिए इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थों में अथवा प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग द्वेष छिपे हुए है मनुष्य को उनके आश्रित नहीं होना चाहिए क्योंकि ये दोनों ही कल्याण मार्ग में शत्रु हैं अत:उन दोनों पर विजयी होकर मनुष्य को स्वधर्म का पालन करना चाहिए।

क्योंकि अच्छी प्रकार आचरण में लाये गए दूसरों के धर्म से अपना गुण रहित धर्म ही श्रेष्ठ है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याण कारक है तथा दूसरे का धर्म तो भय को देने वाला है अथवा अपने मार्ग से विचलित करके पतन की ओर ले जाने वाला है इस के लिए ऊपर के आश्रम धर्म वाले यदि नीचे वाले आश्रम वालों के अनुसार चलेंगे तो उनके लिए अहितकर होगा।

इस पर अर्जुन ने पूछा की हे वार्ष्णेय! फिर न चाहता हुआ भी मनुष्य किस से प्रेरित होकर पाप का आचरण करने लगता है?

भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया -हे अर्जुन! रजोगुण से उत्पन्न यह काम ही क्रोध है यह भोगों से कभी भी न अघाने और उकताने वाला बड़ा ही पापी है इसे तू अपना शत्रु ही जान, जिस प्रकार धुंए से अग्नि, मैल से दर्पण तथा जेर से गर्भ ढका रहता है ठीक वैसे ही इस काम के द्वारा मनुष्य का ज्ञान ढका रहता है।

यह अग्नि के समान कभी भी न अघाने वाले नित्य शत्रु काम के द्वारा मनुष्य का ज्ञान ढका हुआ है, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ये तीनों इस काम के वास स्थान कहे जाते हैं यह मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा हमारे ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को मोहित करता है अत: इन्द्रियों को सबसे पहले वश में करके तू इस ज्ञान विज्ञान का नाश करने वाले शत्रु काम को अवश्य ही बल पूर्वक मार डाल। अपने आप को अशक्त समझने की गलती न कर। इन्द्रियों को स्थूल शरीर से अधिक बलवान और सूक्ष्म कहते हैं। इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है और जो बुद्धि से भी अत्यंत परे है, वह आत्मा है, इसलिए आत्मा को बुद्धि से अत्यंत सूक्ष्म और बलवान समझ कर, बुद्धि के ही द्वारा मन को वश में करके हे महा बाहो! इस कामरूप दुर्जय शत्रु को मार दे।

इति श्री तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय -ज्ञान कर्म संन्यास योग

चित्र 8.1: श्री कृष्ण द्वारा सूर्य को गीता उपदेश का उद्धरण

श्री भगवान बोले हे अर्जुन! मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र विवस्वान से कहा, विवस्वान ने अपने पुत्र इक्षवाकु से कहा, इस प्रकार परंपरा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना। यह योग बहुत काल से इस लोक में लुप्त हो गया था, इसीलिए यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है क्योंकि तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है और यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य है। इस को सुनकर अर्जुन तुरंत बोले -आपका जन्म तो अभी कुछ समय पहले का है परन्तु सूर्य का जन्म बहुत पुराना है, कल्प के आदि में हो चुका था तो मैं कैसे जानूं की आपने यह योग सूर्य से कहा था?

श्री भगवान जी ने उत्तर दिया – हे परन्तप! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं उन सब को तू नहीं जानता किन्तु मैं जानता हूँ, मैं अजन्मा और अविनाशी होते हुए भी और सब प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अपने अधीन करके अपनी योग माया से प्रकट होता हूँ।

हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात साकार रूप से प्रजा के सम्मुख प्रकट होता हूँ साधु मनुष्यों की रक्षा करने के लिए, दुष्ट लोगों का विनाश करने के लिए और धर्म की भलीभाँति स्थापना करने के लिए मैं युग -युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

तुलसी कृत रामचरित मानस के अनुसार भी-

जब जब होइ धर्म कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाई नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।।
।बालकाण्ड120/3, 5, 5 ख।

व्याख्या : जब-जब धर्म का ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं और वे ऐसा अन्याय तथा जघन्य कृत्य करते हैं जिनका वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के दिव्य शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं।

इसीलिए हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात अलौकिक तथा बहुत ही निर्मल हैं इन्हें जो व्यक्ति तत्त्व से जान लेता है वह शरीर को त्यागकर फिर जन्म नहीं लेता है, मुझे ही प्राप्त होताहै। पहले भी जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गए थे और मेरे अनन्य भक्त थे ऐसे मेरे आश्रित रहने वाले बहुत से भक्त ज्ञान रूप तप से पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं। हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरा ही अनुसरण करते हैं परन्तु जो लोग मुझे तत्त्व से नहीं जानते हैं वे कर्म के फल को चाहने वाले देवताओं का पूजन किया करते हैं कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि उनको शीघ्र मिल जाती है।चारवर्णों कासमूह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र गुण कर्मके विभाग पूर्वक मेरे द्वारा ही रचा गया है इस प्रकार इस रचना आदि कर्म का कर्त्ता होने पर भी मुझे तू वास्तव में अकर्त्ता ही जान।

क्योंकि मुझे कर्म लिप्त नहीं करते और न ही मेरी कर्म फलों में स्पृहा रहती है। इस प्रकार जो मुझे तत्त्व से जान लेता है वह कर्मों में नहीं बंधता। मुमुक्षियों अर्थात पूर्व के जिज्ञासु पुरुषों द्वारा इस प्रकार जान कर किये गए कर्मों को तू भी जान कर उनके अनुसार ही कर्म कर। परन्तु कर्म क्या है? अकर्म क्या है? इसका निर्णय करने में बुद्धिमान पुरुष भी विचलित हो जाते हैं वह कर्मों का तत्त्व तुझे समझा कर कहूंगा जिससे तू अशुभ कर्म- बंधन से छूट जाएगा। कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए, क्योंकि कर्म की गति गहन है।

अधिकतर लोग यही समझते हैं कि शास्त्र विहित कर्तव्य कर्मों का नाम कर्म है किन्तु इतना जान लेने से ही कर्तव्य-कर्म का स्वरूप ज्ञात नहीं हो जाता, क्योंकि उसके आचरण में भाव का भेद हो जाता है, अत: कर्तव्य कर्म करने में यदि किन्तु-परन्तु आ जाये तो तत्त्व ज्ञानी पुरुष से कर्म बंधन से मुक्त होने वाले पुरुषों को विचार विमर्श के पश्चात ही कर्म का सम्पादन करना चाहिए।

विकर्म का स्वरूप जानना चाहिए : साधारणतः लोग झूँठ, कपट, चोरी, व्यभिचार और हिंसा आदि पाप कर्मों को ही निषिद्ध मानते हैं, और यही विकर्म है। पर इतना जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। जैसे लोक कल्याण के लिए कभी -कभी विपरीत भी कर्म करना पड़ जाता है अत: इसका यथार्थ स्वरूप तत्त्व ज्ञानी ही बता सकते हैं।

जो मनुष्य कर्म में अकर्म देखता है और जो अकर्म में कर्म देखता है वह मनुष्यों में बुद्धिमान है और समस्त कर्मों को करने वाला है।

कर्म में अकर्म देखना: जीविका और शरीर निर्वाह सम्बन्धी कार्य, यज्ञ, दान व तप जितने भी कर्म हैं, वे यदि कामनाओं सहित फल की इच्छा से किये जाते हैं तो मनुष्य कर्म बन्धनों में फंसता है अर्थात् पाप या पुण्यादि प्राप्त करके स्वर्ग या नरक का भागी होता है, परन्तु यही कार्य मनुष्य आसक्ति, फलेच्छाको त्याग करके और परमात्मा को समर्पित करके करता है तो वह कर्म बंधन में नहीं पड़ता, स्वर्ग या नरक का भागी नहीं होता बल्कि मोक्ष प्राप्त करता है और इस मृत्यु लोक के आवागमन से छूट जाता है, यही कर्म में अकर्म देखना है।

अकर्म में कर्म देखना: लोक प्रसिद्धि में मन, वाणी और शरीर के व्यापार को त्याग देना ही अकर्म है। यह त्याग रूप अकर्म भी आसक्ति, फलेच्छा और अहंकार सहित किये जाने पर पुनर्जन्म का हेतु बनता है, इतना ही नहीं, कर्तव्यों की अवहेलना से तो यह विकर्म (पाप) के रूप में बदल जाता है। इस रहस्य को समझ लेना ही अकर्म में कर्म देखना है। अत: इस प्रकार कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म के तत्त्व को भली भाँति जान कर कर्मशील पुरुष ही बुद्धिमान तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

जिसके सारे शास्त्र सम्मत कर्म बिना कामना और अहंकार रहित तथा अनासक्त भावसे होते हैं तथा ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म हो गए हैं उस महापुरुष को ज्ञानी जन भी पंडित कहते हैं। जो पुरुष कर्म और उनके फल में आसक्ति का त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है वह कर्मों में भली भाँति बरतता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता। जिसका अंत:करण और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है तथा जिसने समस्त भोगों की सामग्री का परित्याग कर दिया है ऐसा आशा रहित पुरुष शरीर संबंधी कर्म करता हुआ पाप को प्राप्त नहीं होता और बिना इच्छा अपने आप प्राप्त हुए पदार्थ में संतुष्ट रहता है।

जो ईर्ष्या नहीं करता, हर्ष, शोकादि द्वंदों से रहित है, सिद्धि-असिद्धि में समान रहनेवाला कर्म योगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बंधता। जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी है, जो अहंकार रहित हो गया है और जिसका चित्त निरंतर परमात्मा के ज्ञान में लगा है ऐसे यज्ञ सम्पादन के लिए किये गए कर्म भली भाँति विलीन हो जाते हैं। जिस यज्ञ में अर्पण किया पदार्थ भी ब्रह्म है, सुरवा आदि भी ब्रह्म है, ब्रह्म रूप कर्त्ता द्वारा ब्रह्म रूप अग्नि में आहुति देना भी ब्रह्म है, उस ब्रह्म कर्म में प्राप्त होने वाला फल भी ब्रह्म ही है।

देवताओं के पूजन रूप यज्ञ का दूसरे योगी जन भली भाँति अनुष्ठान करते हैं और अन्य योगी परमात्मा रूप अग्नि में यज्ञ के द्वारा ही आत्म रूप यज्ञ का हवन करते हैं। तात्पर्य यह है कि योगीजी आत्मा और परमात्मा का भेद मिटाने के लिए तत्त्व ज्ञान का नित्य मनन तथा आत्म संयम द्वारा अभ्यास करते हैं।

अन्य योगी श्रोत्र आदि सभी इन्द्रियों को संयम रूपी अग्नि में हवन करते हैं अर्थात् समस्त इन्द्रियों को अपने वश में किया करते हैं, अन्य शब्दादि विषयों को इन्द्रिय रूप अग्नि में हवन करते हैं। दूसरे योगी जो इन्द्रियों की सम्पूर्ण क्रियाओं को और प्राणों की समस्त क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयम –योग रूप अग्नि में हवन किया करते हैं, आशय यह है किआत्म संयम द्वारा समस्त इन्द्रियों को नियंत्रित किया जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार से लोक कल्याण हेतु कई पुरुष द्रव्य से दानादि करते हैं, अन्य तपस्या करते हैं, दूसरे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि सदाचार का पालन करते हैं, अन्य-अन्य योगी अध्यात्म शास्त्र पठन -पाठन द्वारा लोक सेवा करते हैं और कितने ही दूसरे योगी जनअपान वायु में प्राण वायु को हवन करते हैं।

वैसे अन्य योगी प्राण वायु में अपान वायु को हवन करते हैं तथा अन्य बहुत से प्राणायाम परायण पुरुष प्राण और अपान की गति को रोक कर प्राणों को प्राणों में ही हवन करते हैं ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश कर देने वाले और यज्ञों के रहस्य को जानने वाले हैं। आशय यह कि ये योगी प्राणायाम की पूरी प्रक्रिया का भली भाँति सम्पादन करके लोक सेवा रूपी यज्ञ करते हैं। और हे कुरुश्रेष्ठ! इस प्रकार यज्ञ से बचे हुए प्रसाद रूपी अमृत का अनुभव करने वाले सनातन परब्रह्म को प्राप्त होते हैं परन्तु यज्ञ न करने वाले पुरुष के लिए यह मनुष्य लोक भी सुख दायक नहीं है फिर परलोक

कैसे सुख दायक हो सकता है? इस प्रकार और भी कई तरह के यज्ञ वेदों द्वारा बताये गए हैं उन सब को मन, इन्द्रिय और शरीर की क्रियाओं के द्वारा सम्पन्न होने वाले जान कर तू कर्म बंधन से छूट जायेगा। हे परन्तप अर्जुन! द्रव्यमय यज्ञों की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ अत्यंत श्रेष्ठ है क्योंकि समस्त कर्म ज्ञान द्वारा ही संपन्न होते हैं।

उस ज्ञान को तू तत्त्व ज्ञानियों के पास जाकर समझ, भली प्रकार दंडवत-प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़ कर सुनने से, सरलता पूर्वक प्रश्न करने से तत्त्व दर्शी (परमात्म-तत्त्व भली भाँति जानने वाले) तुझे तत्त्व- ज्ञान का उपदेश करेंगे। जिसे जानकार तू इस प्रकार मोह को प्राप्त नहीं होगा तथा इस ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण भूतों को निःशेष भाव से पहले अपने में और पीछे मुझ सच्चिदानंद घन परमात्मा में देखेगा और यदि तू सब पापियों से भी अधिक पाप वाला है तो भी तू ज्ञान रूपी नौका द्वारा निस्संदेह सम्पूर्ण पाप-सागर से भली भाँति तर जायेगा। क्योंकि हे अर्जुन! जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को जला कर भस्म- मय कर देती है उसी प्रकार ज्ञान रूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म- मय कर देती है, इसीलिए संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल के बाद शुद्धांतःकरण कर्म योग द्वारा स्वयं ही अपने आप आत्मा में पा लेता है।

श्रद्धावान, जितेन्द्रिय, साधन-परायण पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर बिना किसी विलम्ब के भगवत प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। विवेकहीन श्रद्धारहित और संशय युक्त मनुष्य के लिए तो न यह लोक है न परलोक है और न सुख और शान्ति ही है। धनंजय! जिसने कर्मयोग की विधि से सब कर्मों को परमात्मा को अर्पण कर दिया है तथा जिसने विवेक द्वारा अपने समस्त संशयों का निवारण कर लिया है ऐसे अंत: करण वाले पुरुष को कर्म नहीं बांधते। इसीलिए हे भरतवंशी अर्जुन! तू हृदय में स्थित अज्ञान जनित अपने संशय को विवेक रूपी तलवार द्वारा काट कर समत्व रूपी कर्म योग में स्थित हो कर युद्ध के लिए खड़ा हो जा।

इति श्री चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय- कर्म संन्यास योग

तत्पश्चात अर्जुन बोले –

हे कृष्ण! आप कर्मों के संन्यास की तथा पुन: कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं अत: इन दोनों में से जो मेरे लिए निश्चित कल्याण कारक हो उसे कहिये। इस पर श्री भगवान जी ने उत्तर दिया -कर्म संन्यास अर्थात् मन इन्द्रियों और शरीर द्वारा सम्पूर्ण कर्मों में कर्त्तापन का त्याग और कर्मयोग अर्थात् समत्व बुद्धि से भगवदर्थ कर्म करना, इन दोनों में भी कर्म सन्यास से कर्मयोग साधन में सुगम होने से श्रेष्ठ है। वह कर्म योगी जो न तो किसी से द्वेष ही करता है और न ही किसी से कोई आकांक्षा करता है, सदा सन्यासी ही समझने योग्य है, क्योंकि ऐसा पुरुष राग -द्वेषादि द्वन्दों से मुक्त हो जाता है।

मूर्ख लोग ही सन्यास और कर्मयोग को पृथक-पृथक फल देने वाला कहते हैं न कि पंडित जन क्योंकि दोनों में से किसी एक में सम्यक प्रकार से स्थित पुरुष दोनों के ही फल रूप परमात्मा को प्राप्त होता है तथा ज्ञान योगियों द्वारा जो सिद्धि परम धाम प्राप्त की जाती है वही कर्म योगियों द्वारा भी प्राप्त हो जाती है; परन्तु हे अर्जुन! बिना कर्मयोग के सन्यास अर्थात् इन्द्रियों तथा शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्त्तापन का त्याग प्राप्त होना कठिन है। परमात्मा के स्वरूप को मनन करने वाला कर्म योगी परब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है तथा ऐसा कर्म योगी जिसका मन अपने वश में है जितेन्द्रिय और विशुद्ध अंतःकरण वाला है और सम्पूर्ण प्राणियों का आत्म रूप परमात्मा ही जिसकी आत्मा है वह कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता और हे अर्जुन! तत्त्व को जानने वाला सांख्य योगी देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ, आँखों को खोलता हुआ, मूंदता हुआ भी सब इन्द्रियाँ अपने-अपने अर्थों में बरत रहीं हैं, इस प्रकार समझ कर माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ।

जो पुरुष आसक्ति त्याग कर सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके करता है वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता। केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर कर्म योगी अंतःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं। कर्म योगी तो कर्मों के फल का त्याग करके भगवत प्राप्ति रूपी शान्ति को प्राप्त करता है और सकाम पुरुष

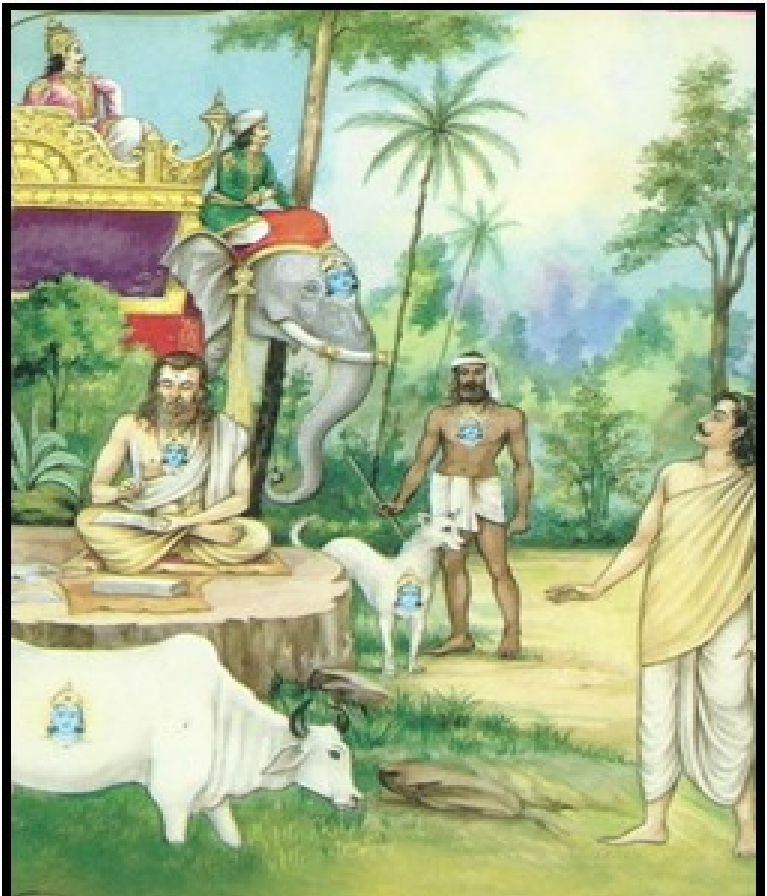

चित्र 9.1: श्री कृष्ण द्वारा कर्म संन्यास योग का वर्णन

कामनाओं की प्रेरणा से फल में आसक्त होकर बंधता है। सब कर्मों को मन से त्यागकर, अंतःकरण जिसके वश में है ऐसा सांख्य योग का आचरण करने वाला पुरुष न करता हुआ, न करवाता हुआ ही नवद्वार वाले शरीर रूप घर में, सब कर्मों को मन से त्याग कर आनंदपूर्वक सच्चिदानंद घन परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है।

परमेश्वर मनुष्यों के न तो कर्त्तापन की, न कर्मों की और न ही कर्मफल के संयोग की रचना करते हैं, यह सब प्रकृति अर्थात् स्वभाव ही बरतता है और परमेश्वर भी न किसी के पाप को और न ही शुभ कर्म को ग्रहण करते हैं किन्तु अज्ञान से ज्ञान ढका हुआ है। इसी से अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं। परन्तु जिन का यह अज्ञान परमात्मा के तत्त्व ज्ञान द्वारा नष्ट हो जाता है उनका यह प्राप्त हुआ ज्ञान सूर्य का सदृश सच्चिदानंद घन परमात्मा को प्रकाशित कर देता है और हे अर्जुन! जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही और सच्चिदानंदघन परमात्मा में ही जिनकी एकीभाव से स्थिति है ऐसे तत्परायन पुरुष ज्ञान के द्वारा पापरहित होकर परम गति को प्राप्त होते हैं।दया और विनय -युक्त ब्राह्मण में, गौ, हाथी, कुत्ते और चांडाल में भी समदर्शी ही होते हैं, इसलिये जिनका मन समभाव में स्थित है, उनके द्वारा सम्पूर्ण संसार इस जीवित अवस्था में ही जीत लिया गया है।

क्योंकि सच्चिदानंद घन परमात्मा निर्दोष और सम हैं इस से ऐसे पुरुष सच्चिदानंद घन परमात्मा में ही स्थित हैं और जो पुरुष प्रिय को पाकर हर्षित नहीं होता और अप्रिय को पाकर उद्विग्नता को प्राप्त नहीं होता ऐसा स्थिर- बुद्धि और संशय रहित पुरुष सच्चिदानंद घन परब्रह्म परमात्मा में एकीभाव से स्थित है। बाहर के विषयों में अनासक्त अंतःकरण वाला साधक आत्मा में स्थित जो ध्यान जनित आनंद है उसको प्राप्त होता है। तदनंतर वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म परमात्मा के ध्यान रूप योग में स्थित पुरुष अक्षय आनंद का अनुभव करता है।

ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग से पैदा होने वाले सब सुखादि भोग यद्यपि विषयी पुरुषों को ये सुख देने वाले प्रतीत होते हैं तो भी निस्संदेह ये दुख के ही हेतु हैं और आदि-अंत वाले हैं, हे अर्जुन! बुद्धिमान विवेकी पुरुष इनमें नहीं रमता। शरीर कानाश होने से पहले ही जो मनुष्य काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहने में समर्थ हो जाता है, वही योगी और वही सुखी है। जो पुरुष निश्चय करके अंतरात्मा में ही सुख वाला है, आत्मा में ही रमण करने वाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञान वाला है वह सच्चिदानंद घन परमात्मा के सतत एकीभाव को प्राप्त सान्ख्ययोगी शांत ब्रह्म को प्राप्त होता है।

जिनके सब पाप नष्ट हो गए हैं, जिनके सभी संशय ज्ञान द्वारा नष्ट हो गए हैं तथा जो सब प्राणियों के हित में लगे रहते हैं, जिनका जीता हुआ मन निश्चल भाव से परमात्मा में स्थित है वे ब्रह्म वेत्ता पुरुष शांत ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। काम क्रोध से रहित, जीते हुए चित्त वाले, परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषों के लिए सब और से शान्त परब्रह्म ही परिपूर्ण है। बाहर के विषयों को चिन्तन न करता हुआ, बाहर ही निकाल कर और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के मध्य स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ और मन जीते हुए हैं ऐसा मोक्ष होने की इच्छा वाले मनन परायण मुनि जो इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है वह सदा मुक्त ही है और हे अर्जुन! मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला, समस्त लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर, सम्पूर्ण भूत प्राणियों का सुहृद अर्थात निस्स्वार्थ दयालु और प्रेमी ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

इति श्री पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय -आत्म संयम योग

तत्पश्चात श्री भगवान बोले –

कर्मफल का आश्रय न लेकर जो पुरुष कर्म करता है वह सन्यासी और योगी है। केवल अग्नि का त्याग करने वाला सन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं है। जिसे सन्यास कहते हैं उसी को तू योगी जान, क्योंकि संकल्पों का त्याग न करने वाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता।

टिप्पणी:-अग्नि का त्याग करके सन्यास आश्रम ग्रहण करने वाले पुरुष को 'निरग्निर' कहते हैंजिसने अग्नि को त्याग कर सन्यास तो ग्रहण कर लिया है पर यदि वह सांख्य योग के लक्षणों से युक्त नहीं है, वह वास्तव में सन्यासी नहीं है क्योंकि उसने केवल अग्नि का त्याग किया है समस्त क्रियाओं में कर्त्तापन के अभिमान का त्याग, ममता, आसक्ति और देहाभिमान का त्याग नहीं किया है।

संकल्प का अर्थ :-ममता और राग-द्वेष से संयुक्त सांसारिक पदार्थों का चिन्तन करने वाली जो अंतःकरण की प्रवृति है उसे संकल्प कहते हैं।

योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति में निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा गया है और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष का जो सर्व संकल्पों का अभाव है वही कल्याण में हेतु कहा गया है।

योगारूढ़ पुरुष के लक्षण :-जिस काल में न तो इन्द्रियों के भोगों में न कर्मों में ही आसक्त होता है उस काल में सर्व संकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।

मनुष्य को चाहिए अपने द्वारा स्वयं ही अपना संसार सागर से उद्धार करे और अपने आप को अधोगति में न डाले क्योंकि मनुष्य आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है क्योंकि जिस जीवात्मा द्वारा मन, शरीर और इन्द्रियों को जीता हुआ है उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन, शरीर तथा इन्द्रियों को नहीं जीता गया है उसके लिए वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में बरतता है जिसके अंत: करण की वृत्तियाँ

सर्दी –गर्मीसुख-दुखादि में तथा मान-अपमान में भली भाँतिशांत हैं ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानंद घन परमात्मा सम्यक रूप से स्थित हैं अर्थात् उसके ज्ञान में परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। और जिसका अंतःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, विकार रहित है स्थिति जिसकी, तथा जीती हुई हैं इन्द्रियाँ जिसकी, और मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण हैं सामान हैं जिसके लिए, वह योगी भगवत प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है। सुहृदय, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणों में, धर्मात्माओं में और पापियों में समान भाव रखने वाला अत्यंत श्रेष्ठ है, इसीलिए उचित है कि मन, इन्द्रियों और शरीर को वश में रखने वाला आशा रहित, संग्रह रहित योगी अकेला ही एकांत स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरंतर परमात्मा की भक्ति में लगाये कैसे कि- शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृग छाला और वस्त्र हों जो न बहुत ऊंचा हो और न बहुत नीचा हो ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन करके और उस आसन पर बैठ कर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अंतःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे।

ध्यानयोग की विधि

काया, सर और गले को समान एवम् अचल धारण करके और स्थिर होकर अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ -ब्रह्मचारी के व्रत में स्थित भयरहित तथा भली भाँतिशांत अंतःकरण वाला सावधान योगी मन को रोक कर मुझ में चित्त वाला और मेरे परायण होवे।

इस प्रकार आत्मा को निरंतर मुझ परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ मुझ में रहने वाली परमानंद की पराकाष्ठा रूप शान्ति को वश किये हुए मन वाला योगी प्राप्त करता है। परन्तु हे अर्जुन! यह योग न तो बहुत खाने वाले का, न बिलकुल न खाने वाले का और न बहुत शयन करने वाले का, और न सदा जागने वाले का ही सिद्ध होता है। यह दुखों का नाश करने वाला योग तो यथा योग्य आहार -विहार करने वालों का, कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वालों का और यथा योग्य सोने और जागने वालों का ही सिद्ध होता है।

इस प्रकार योग के अभ्यास से अत्यन्तवश में किया गया चित्त जिस काल में परमात्मा में भली भाँतिस्थित हो जाता है उस काल में समस्त भोगों से स्पृहा रहित पुरुष योग युक्त कहा जाता है। जैसे सुनसान वायु रहित स्थान में दीपक चलायमान नहीं होता वैसे ही परमात्मा के ध्यान में लगा हुआ योगी का चित्त भी स्थिर रहता है, और हे अर्जुन! जिस अवस्था में योग के अभ्यास से निरुद्ध चित्त उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में परमात्मा के ध्यान में सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा को साक्षात्कार करता हुआ परमात्मा में ही संतुष्ट रहता है तथा इन्द्रियों से अति परे केवल सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अत्यन्त आनंद है। उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित यह योगी परमात्मा के स्वरूप से विचलित होता ही नहीं और जो दूख रूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिए।परमात्मा प्राप्ति रूप जिस लाभ को पाकर उस से अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्माप्राप्ति रूप जिस अवस्था में बड़े भारी दुख से भी विचलित नहीं होता और जो दुख रूप संसार के संयोग से रहित है जिसका नाम योग है उसे जानना, वह योग न उकताए हुए मन से अर्थात् उत्साह युक्तचित्त से निश्चय पूर्वक करनाकर्तव्य है।

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि संकल्प से उत्पन्न सभी कामनाओं को निःशेष रूप से त्याग कर मन द्वारा इन्द्रियों को सभी और से रोक कर क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ स्थिरता को प्राप्त होवे तथा धैर्य युक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थिर करके परमात्मा के सिवा कुछ भी चिंतन न करे। यह स्थिर न रहने वाला यह चंचल मन जिस -जिस विषय के लिए संसार में भटकता है उस-उस विषय से रोक कर इसे बार-बार परमात्मा में ही लगावे अर्थात् निरुद्ध करे क्यों कि जिसका मन भली प्रकार शांत है जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शांत हो गया है इस सच्चिदानंद घन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को उत्तम आनंद प्राप्त होता है।

वह पाप रहित योगी इस प्रकार आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुख पूर्वक पर ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति रूप अनंत आनंद का अनुभव करता है और हे अर्जुन! एकीभाव से स्थित योग से सर्व व्यापी अनंत चेतन में युक्तात्मा सब में सम भाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में स्थित देखता है। जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को

मुझ वासुदेव के अंतर्गत ही देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता इस प्रकार एकीभाव में स्थित होकर सम्पूर्ण भूतों में आत्म रूप से स्थित मुझ सच्चिदानंद घन वासुदेव को भजता है वह योगी सब प्रकार से बरतता हुआ भी मुझ में ही बरतता है।

हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुख को भी सब में सम देखता है वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है। इस पर अर्जुन ने कहा -हे मधुसूदन! यह योग जो आपने समभाव से कहा है मन के चंचल होने से मैं इसकी नित्य स्थिति को नहीं देखता हूँ, क्योंकि हे श्रीकृष्ण! यह मन बड़ा चंचल, जिद्दी स्वभाव वाला, बड़ा दृढ़ और बलवान है इसलिए इसका वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यंत दुष्कर मानता हूँ। श्री भगवान बोले – हे महा बाहो! निस्संदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह वैराग्य और अभ्यास से वश में होता है।

क्योंकि जिसका मन वश में नहीं है ऐसे पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है और मन को वश में किये हुए मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन से सहज है, यह मेरा मत है।इस पर अर्जुन बोले- हे कृष्ण! जो योग में श्रद्धा रखने वाला है किन्तु संयमी नहीं है इस कारण अन्त काल में जिसका मन योग से विचलित हो गया है, ऐसा साधक योगी योग सिद्धि अर्थात् साक्षात्कार को प्राप्त न होकर किस गति को प्राप्त होता है? और हे महा बाहो! क्या भगवत प्राप्ति के मार्ग में मोहित वह आश्रय रहित पुरुष छिन्न -भिन्न बादल की तरह दोनों और से भ्रष्ट होकर नष्ट तो नहीं हो जाता? हे श्री कृष्ण! मेरे इस संशय को सम्पूर्ण रूप से छेदन करने के लिए आप ही योग्य हैं, आपके सिवा इस संशय का छेदन करने वाला मिलना सम्भव नहीं है। इस का उत्तर भगवान श्रीकृष्ण ने दिया- हे पार्थ! ऐसे योग्य भ्रष्ट पुरुष का न तो इस लोक में विनाश होता है और न परलोक में ही, क्योंकि हे प्रिय! आत्मोद्धार के लिए अर्थात् भगवत प्राप्तिके लिए कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

किन्तु वह योग भ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को अर्थात स्वर्गादि उत्तम लोकों को प्राप्त होकर उनमें बहुत वर्षों तक निवास करके फिर शुद्ध आचरणवाले श्रीमान पुरुषों के घर में जन्म लेता है अथवा वैराग्य वान पुरुष उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान योगियों के कुल में जन्म लेता है, पर इस प्रकार का जन्म संसार में निस्संदेह अत्यंत दुर्लभ है और

वह पुरुष वहां उस पहले शरीर में संग्रह किये हुए सम बुद्धि के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन! उसके प्रभाव से वह फिर परमात्मा रूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़ कर प्रयत्न करता है, इस प्रकार वह जन्म लेने वाला योगभ्रष्ट पराधीन हुआ भी उस पहले के अभ्यास से ही निस्संदेह भगवान की और आकर्षित किया जाता है।

वह समबुद्धि जिज्ञासु पुरुष वेद में कहे गए सकाम कर्मों के फल को उल्लंघन कर जाता है। परन्तु, प्रयत्न पूर्वक यह अभ्यासी पुरुष अनेक जन्मों के संस्कारों के बल से इसी जन्म में संसिद्ध होकर एवं सम्पूर्ण पापों से रहित होकर फिर तत्काल ही परमगति को प्राप्त हो जाता है क्योंकि योगी तपस्वियों से भी श्रेष्ठ है, शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है और सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है इससे हे अर्जुन! तू योगी हो और हे प्रिय अर्जुन! सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी मुझ में लगे हुए अंतरात्मा से मुझको भजता है उस योगी को मैं परम श्रेष्ठ मानता हूँ।

इति श्री षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय -ज्ञानविज्ञान योग

भगवान का समग्र रूप- इसके पश्चात श्री भगवानबोले हे पार्थ! मुझ में आसक्त चित्त से मेरे परायण होकर योग में लगा हुआ तू जिस प्रकार से सम्पूर्ण विभूति, बल, एश्वर्यादि, सबके आत्म रूप मुझको जानेगा, उसको सुन। मैं तेरे लिए इस तत्त्व-ज्ञान को कहूंगा जिसे जान लेने पर फिर कुछ भी जानने के लिए शेष नहीं रहता परन्तुहजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए प्रयास करता है और उन प्रयास करने वालों में कोई एक मुझे तत्त्व से जानता है, परन्तु हे अर्जुन! पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि, मन, बुद्धि और अहंकार इस प्रकार आठ प्रकार विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकार वाली अपरा तो मेरी जड़ प्रकृति है और इससे दूसरी प्रकृति को जिससे यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है, मेरी जीव रूपा परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान।

और हे अर्जुन! तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत समुदाय इन दोनों प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं, मैं ही सारे जगत का प्रभव तथा प्रलय हूँ अर्थात् मूल कारण हूँ इसलिए हे धनंजय! मुझ से भिन्न कोई दूसरा कारण नहीं है यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में सूत्र की मणियों के सदृश मुझ में गूंथा हुआ है कैसे कि मैं जल में रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदों में पवित्र ओंकार हूँ, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ, पृथ्वी में पवित्र गंध और अग्नि में तेज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन हूँ और तपस्वियों का तप हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का सनातन बीज मैं ही हूँ, मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ। और हे भरत श्रेष्ठ! मैं बलवानों का श्रेष्ठ बल, सम्पूर्ण भूतों में धर्म के अनुकूल काम हूँ तथा और भी जो सत्त्व गुण से उत्पन्न होने वाले जो भावहैं और रजोगुण तथातमोगुण से होने वाले भाव हैं वे सब मुझ से ही होते हैं परन्तु वास्तव में उन में मैं; और वे मुझ में नहीं है तात्पर्य यह है कि मैं गुणातीत और अनासक्त रहकर ही जीवों का परमात्मा हूँ।

सात्त्विक, राजस और तामस इन तीन गुणों के कार्य रूप सारा जगत मोहित हो रहा है इसीलिए इन तीन गुणों से परे मुझ अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता क्योंकि यह त्रिगुण दाता माया अर्थात् प्रकृति बड़ी दुस्तर (चालाक)है परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरंतर भजते हैं वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं, क्योंकि माया के द्वारा जिन का ज्ञान हारा जा चूका है ऐसे असुर भाव वाले मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूढ़ लोग मुझे नहीं भजते।

हे भरत वंशी अर्जुन! उत्तम कर्म करने वाले, अर्थार्थी, आर्त प्राणी, जिज्ञासु और ज्ञानी-ऐसे चार प्रकार के भक्त जन मुझको भजते हैं।उनमें नित्य एकीभाव से स्थित अनन्य भक्ति वाला ज्ञानी अति उत्तम है क्योंकि मुझे तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी भक्त को मैं बहुत प्रिय हूँ और वह मुझे बहुत प्रिय है वैसे तो ये सभी उदार हैं परन्तु ज्ञानीतो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है-ऐसा मेरा मत है क्योंकि वह मद्गत मन बुद्धि वाला अति उत्तम गति स्वरूप मुझ में ही अच्छी प्रकार स्थित है और जो अनेक जन्मों के पश्चाततत्त्व ज्ञान को प्राप्त पुरुष सब कुछ वासुदेव ही है ऐसा समझ कर जो मुझे भजता है ऐसा महात्मा दुर्लभ है।उन-उन भोगों की कामना द्वारा जिनका ज्ञान अपहृत हो चका है अपने स्वभाव से प्रेरित होकर उस -उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात् पूजते हैं इसीलिए जो जो भक्त जिस- जिस देवता के स्वरूप को चाहता है उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं ही उस-उस देवता के प्रति स्थिर करता हूँ तथा जिस -जिस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता का पूजन करता है।

तथा श्रद्धा से युक्त होकर जिस देवता की वह पूजा करता है उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किये इच्छित भोगों को ही प्राप्त करता है परन्तु उन अल्प बुद्धि वालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं तथा मेरे भक्त मुझे चाहे जैसे ही भजें मुझको ही प्राप्त होते हैं ऐसा होने पर भी सब मनुष्य मुझे नहीं भजते कारण -बुद्धि हीन पुरुष मेरे अति उत्तम अविनाशी परम भाव को न जानते हुए मन इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानंद परमात्मा को मनुष्य की भाँति जन्म –मरण वाला समझते हैं क्योंकि मैं अपनी योगमाया से छिपा हुआ सबके प्रत्यक्ष नहीं होता इसीलिए अज्ञानी जन समुदाय मुझ अविनाशी अजन्मे को जन्मने मरने वाला समझता है।

हे अर्जुन! पूर्वातीत और वर्तमान तथा भविष्य में होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूँ परन्तु कोई भी भक्ति हीन -श्रद्धाहीन पुरुष नहीं जानता। क्योंकि हे भरत वंशी अर्जुन! संसार में इच्छा-द्वेष से उत्पन्न, सुख-दु:ख, द्वन्द्व, मोह से सम्पूर्ण प्राणी मोह को प्राप्त हो रहे हैं परन्तु निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाले जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है वे राग-द्वेष जनित मोह से मुक्त होकर दृढ़ निश्चयी भक्त मुझे सब प्रकार से भजते हैं। जो जरा और मरण से छूटने के लिए मेरी शरण लेकर प्रयास करते हैं वे पुरुष ब्रह्म को, अध्यात्म को और सम्पूर्ण कर्म को जानते हैं।

इति श्री सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय-अक्षर ब्रह्म योग

अर्जुन बोले-

हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत नाम से क्या है? और अधिदेव किसे कहते हैं? और हे मधुसूदन! अधियज्ञ कौन है और इस शरीर में कैसे है? तथा युक्त चित्त वाले पुरुषों द्वारा अंत: काल में किस प्रकार जानने में आते हैं?

श्री भगवान ने उत्तर दिया- अर्जुन! परम अक्षर ब्रह्म है, स्वयं का स्वरूप जीवात्मा अध्यात्म नाम से कहा जाता है तथा भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला जो त्याग है, वह कर्म नाम से कहा गया है। उत्पत्ति और विनाश वाले पदार्थ अधिभूत हैं, हिरण्य पुरुष अधिदेव हैं और शरीर में स्थित मैं ही अधियज्ञ हूँ और जो प्राणी शरीर को त्यागते समय मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। कारण कि हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्त काल में जिस-जिस भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है उस-उस को ही प्राप्त होता है अर्थात अंतकाल में उसे वही भाव आते हैं जिनसे वह सदा भाव -भावित रहा हो।

इसीलिए हे अर्जुन! तू सब समय में मेरा ही स्मरण कर और युद्ध भी कर इस प्रकार मुझे अर्पित मन-बुद्धि से युक्त होकर तू निःसंदेह मुझ को ही प्राप्त होगा। हे पार्थ! परमेश्वर के ध्यान योग से युक्त अभ्यास से दूसरी ओर न जाने वाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशमय दिव्य पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है। इससे जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सबके धारण–पोषण करने वाले, अचिन्त्य स्वरूप, सूर्य के सद्दश नित्य चेतन प्रकाश रूप और अविद्या से अति परे शुद्ध सच्चिदानन्द घन परमेश्वर का स्मरण करता है वह भक्ति युक्त पुरुष अन्त काल में भी योग बल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार से स्थापित कर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ दिव्य रूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

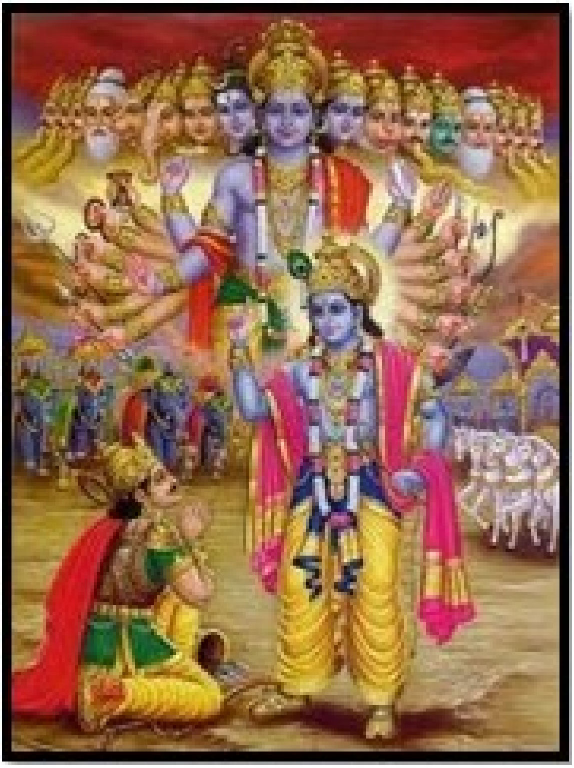

चित्र 12.1: भगवान का समग्र रूप

और हे अर्जुन! जिस सच्चिदानंद घनरूप पद को वेदके जानने वाले विद्वान अविनाशी कहते हैं, आसक्ति रहित यत्नशील सन्यासी महात्मा जन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उस परम पद को तेरे लिए संक्षेप में कहूंगा। हे अर्जुन! सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर और मन को हृद्देश में स्थिर करके फिर उस जीते हुए मन के द्वारा प्राण को मस्तक में स्थापित करके परमात्मा संबंधी योग धारणा में स्थिर होकर जो पुरुष 'ॐ'इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ रूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

हे अर्जुन! जो पुरुष अनन्य चित्त होकर सदा ही निरंतर मुझ परमात्मा को स्मरण करता है, उस नित्य-निरंतर मुझ में युक्त हुए योगी के लिए तो मैं सदा सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ। परम सिद्धि को प्राप्त महात्मा जन मुझको प्राप्त होकर इस दुखों के घर पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते, क्योंकि हे अर्जुन! ब्रह्म लोक तक सभी लोक पुनरावर्ती हैं परन्तु मुझे प्राप्त होकर फिर पुनर्जन्म नहीं होता क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये ब्रह्मादि लोक काल के द्वारा सीमित होने से अनित्य हैं।

हे अर्जुन! जो पुरुष ब्रह्मा के एक दिन को एक हजार चतुर्युगी तक की अवधि वाला और रात्रि को भी एक हजार चतुर्युगी अवधि वाला तत्त्व से जानते हैं वे योगी जन काल के तत्त्व को जानने वाले हैं। इसलिए वे यह भी जानते हैं कि-सम्पूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्मा के दिन के प्रवेश काल में अव्यक्त ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेश काल में उस अव्यक्त ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार यही भूत समुदाय उत्पन्न हो कर प्रकृति के वश में हुआ रात्रि के प्रवेश काल में लीन होता है और दिन के प्रवेश काल में फिर उत्पन्न होता है।

परन्तु, उस अव्यक्त से भी अति परे दूसरा जो विलक्षणव सनातन अव्यक्त भाव है वह परम दिव्य पुरुष सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है। जो यह अव्यक्त 'अक्षर' इस नाम से कहा गया है उसी अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परम गति कहते हैं तथा इसी सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य फिर वापिस नहीं आते वही यह मेरा परम धाम है।

हे पार्थ! जिस परमात्मा के अंतर्गत सब भूत प्राणी हैं और जिस परमात्मा से यह जगत परिपूर्ण है वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष तो अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होने के योग्य है। हे अर्जुन! जिस काल में शरीर त्याग कर गए हुए योगी जन तो वापस न लौटने वाली गति को और जिस काल में गए हुए वापस लौटने वाली गति को ही प्राप्त होते हैं उस काल को अर्थात् दोनों मार्गों को कहूंगा।

उन दोनों मार्गों में से जिस मार्ग में -ज्योतिर्मय अग्नि-अभिमानी देवता है, शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छ: महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मर कर गए हुए ब्रह्म वेत्ता योगी जन उपर्युक्त देवताओं द्वारा ले जाए जाकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

जिस मार्ग में रात्रि- अभिमानी देवता है, तथा कृष्ण पक्ष का अभिमानी देवता है, और दक्षिणायन के छ: महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मर कर गया सकाम कर्म करने वाला योगी उपर्युक्त देवताओं द्वारा कर्म से ले जाया गया चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने कर्मों का फल भोग कर वापस आता है।

क्योंकि जगत से प्रस्थान हेतु ये दो मार्ग शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देव यान और पितृ यान बताये गये हैं, एक मार्ग के द्वारा गया योगी पुनः नहीं लौटता, परम गति को प्राप्त हो जाता है और दूसरे पितृ मार्ग से गया योगी पुनः लोट कर आता है जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है और हे पार्थ! कोई भी योगी इन दोनों मार्गों को जानकार मोहित नहीं होता इस कारण हे अर्जुन! तू सब कल में सम बुद्धि योग से युक्त मेरी प्राप्ति रूप साधन करने वाला हो। क्योंकि योगी पुरुष इस रहस्य को तत्त्व से जान कर वेदों के पढ़ने में, यज्ञ, तप व दानादि करने में जो पुण्य फल मिलता है उसका निस्संदेह उल्लंघन कर जाता है और सनातन परम पद को प्राप्त होता है।

इति श्री अष्टम अध्याय

नवम अध्याय-राजविद्या राजगुह्य योग

इस परम गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान को तुझ दोष -दृष्टि रहित भक्त के लिए कहूंगा, जिसे जानकार तू दुखरूपी संसार से तर जायेगा।यह विज्ञान सहित ज्ञान सब विद्याओं का राजा, सब गोपनीयों का राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फल देने वाला, साधन करने में बड़ा सुगम और अविनाशी है। हे परन्तप! इस उपर्युक्त धर्म में श्रद्धा रहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्यु रूप संसार में भ्रमण करते रहते हैं।

मुझ निराकार परमात्मा से यह सब जगत परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अंतर्गत संकल्प के आधार पर स्थित हैं किन्तु वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूँ। सब भूत मुझ में स्थित नहीं हैं। मेरी ईश्वरीय शक्ति को देख, कि भूतों का धारण -पोषण करने वाला और उत्पन्न करने वाला भी मेरा आत्मा वास्तव में उनमें स्थित नहीं है। क्योंकि जैसे आकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचरने वाली वायु सदा आकाश में ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मुझ में स्थित हैं ऐसा समझ। और हे अर्जुन! कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति में लीन हो जाते हैं तथा कल्प के प्रारम्भ में उनको पुन: रचता हूँ।

किस प्रकार –अपनी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव के बल से परतंत्र हुए इस समस्त भूत समुदाय को बार-बार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ इसका कारण यह है की मैं उन कर्मों को अनासक्त भाव से उदासीन के सदृश स्थित मुझ परमात्मा को कर्मों का बंधन नहीं हो पाता। हे अर्जुन! मेरे अधिष्ठाता के सकाश से अर्थात् मेरे आदेशों के अनुसार ही मेरे अधीन यह प्रकृति सारे जगत को रचती है और इस हेतु यह संसार-चक्र घूम रहा है, ऐसा होने पर भी मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ समस्त भूतों के महान ईश्वर को तुच्छ समझते हैं, साधारण मनुष्य मानते हैं वे नासमझ लोग व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म, व्यर्थ ज्ञान वाले, अज्ञानी जन विक्षिप्त चित्त वाले, राक्षसी और मोहिनी प्रकृति को ही धारण किये रहते हैं।

परन्तु हे कुंती पुत्र! दैवी प्रकृति वाले महात्मा जन मुझको सब भूतों का सनातन कारण, अविनाशी अक्षर स्वरूप, जान कर अनन्य भाव से मुझे भजते हैं वे दृढ़ निश्चय वाले भक्त निरंतर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए तथा मरी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हुए, बार-बार मुझे प्रणाम करते हुए सदा मेरे में ध्यान लगाए हुए अनन्य प्रेम से मेरी उपासना करते हैं, दूसरे ज्ञान योगी मुझ निराकार ब्रह्म का ज्ञान यज्ञ द्वारा अभिन्न प्रकार से पूजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं और दूसरे मनुष्य पृथक-पृथक भाव से मुझ विराट स्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं।

क्योंकि क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषधि मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवन रूपी क्रिया भी मैं हूँ। इस सम्पूर्ण जगत का माता, पिता, पितामह, जानने योग्य, पवित्र, ओंकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। और हे अर्जुन! प्राप्त होने योग्य परम धाम, भरण – पोषण करने वाला, सबका स्वामी, शुभाशुभ का देखने वाला, सबका वास-स्थान, शरण लेने योग्य, प्रत्युपकार न चाह कर भी उपकार करने वाला, सबकी उत्पत्ति-प्रलय का हेतु, स्थिति का आधार, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्य रूप से तपता हूँ, वर्षा का आकर्षण करता हूँ और उसे बरसाता हूँ।

हे अर्जुन! मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ और सत् और असत् भी मैं ही हूँ, परन्तु जो तीनों वेदों में विधान किये हुए सकाम कर्म करने वाले, सोमरस का पान करने वाले, पापरहित पुरुष मुझे यज्ञों के द्वारा पूजने वाले स्वर्ग की प्राप्ति चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्यों के फल स्वरूप स्वर्ग लोक को प्राप्त करके स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं। वे उस विशाल स्वर्ग को भोग कर, पुण्य क्षीण होने पर वापस मृत्यु लोक को प्राप्त होते हैं इस प्रकार तीनों वेदों में कहे गए सकाम कर्मों का आश्रय लेने वाले और भोगों की कामना करने वाले पुरुष बार-बार आवागमन को प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग को जाते हैं और पुण्य क्षीण होने पर पुनः मृत्यु लोक में आ जाते हैं।

जो अनन्य प्रेमी भक्त जन मुझ परमेश्वर को निरंतर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य-निरंतर चिंतन करने वाले भक्तों का योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

योग-क्षेम का स्पष्टीकरण:-अप्राप्ति का नाम योग और प्राप्त की रक्षा का नाम क्षेम है। साधन सम्बन्धी, जीवनोपयोगी सभी समस्याओं का निराकरण भी भगवान किसी न किसी माध्यम से करा देते हैं इसलिए निष्काम भाव से भगवान की पूजा करने से भक्त का पूरा दायित्व स्वयं भगवान ले लेते है, प्रह्लाद का जीवन इसका सुन्दर उदाहरण है।

हे अर्जुन! जो सकाम भक्त श्रद्धा से युक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं वे भी मुझे ही पूजते हैं परन्तु उनका यह पूजना विधि पूर्वक नहीं है अर्थात् अज्ञान पूर्वक है क्योंकि समस्त यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ। परन्तु वे अज्ञानी मुझे नहीं जानते इसी से गिरते हैं, अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं। कारण यह है की देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितृों को पूजने वाले पितृों को प्राप्त होते हैं तथा भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और इसी प्रकार मुझे पूजने वाले मुझको ही प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन! जो भक्त प्रेम से भक्ति पूर्वक मुझे पत्र, पुष्प, फल और जल आदि अर्पण करता है उस शुद्ध बुद्धि भक्त का प्रेम पूर्वक अर्पण किया पुष्प पत्रादि मैं प्रीति पूर्वक ग्रहण करता हूँ।

चित्र 13.1: श्री कृष्ण अर्जुन गूढ़ संवाद

इसलिए हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है वह सब मुझको अर्पण कर। इस प्रकार जिस क्रिया में सब कर्मादि मुझे अर्पण किये जाते हैं ऐसे संन्यास योग से युक्त चित्त वाला शुभाशुभ फल रूप कर्म - बंधन से छूट जायेगा और उन कर्मों से मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा। यद्यपि मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय, परन्तु जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं वे मुझ में हैं और मैं भी उन में प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। यदि कोई अति दुराचारी भी अनन्य भाव

से मुझे भजता है वह भी साधु ही मानने योग्य है। क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है। तात्पर्य यह है। कि उसने भली भाँति समझ लिया है कि परमात्मा के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है। इसीलिए वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है।

हे अर्जुन! तू निश्चय जान की मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता, क्योंकि हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पाप योनि जो कोई भी हो वे भी मेरी शरण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं फिर इसमें तो कहना क्या है जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन मेरी शरण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं। इसलिए तू सुख रहित क्षण भंगुर इस मनुष्य -शरीर को प्राप्त होकर निरंतर मेरा ही भजन कर, मुझ में मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्मा को मुझ में नियुक्त करके तू मुझे ही प्राप्त होगा।

इति श्री नवम अध्याय।

दशम अध्याय-विभूति योग

चित्र 14.1: श्री कृष्ण द्वारा योग विद्या के रहस्य का वर्णन

श्री भगवान बोले-

हे महाभावो! मेरे प्रिय प्रभाव युक्त वचनों को फिर सुन, जिसे मैं तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिए कहूंगा। मेरी उत्पत्ति अर्थात् प्रकट होने को न तो देवता लोग ही जानते हैं और न ही महर्षिगण क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का आदिकारण हूँ। जो मुझे अजन्मा अनादि और लोकों का महान ईश्वर तत्त्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और हे अर्जुन! बुद्धि, ज्ञान, संशय मुक्त, क्षमा भाव, सत्यता, इन्द्रियों का वश में करना, मन का निग्रह तथा सुख-दु:ख, उत्पत्ति-प्रलय, भय-अभय, अहिंसा, समता,

संतोष, तप, दान, कीर्ति और अपकीर्ति – ऐसे ये प्राणियों के भाव मुझसे ही होते हैं। और हे अर्जुन! सात महर्षि जन, चार उनसे भी पहले होने वाले सनकादि तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु -ये मुझ में भाव वाले सब के सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं जिनकी संसार में सम्पूर्ण प्रजा है।

जो पुरुष मेरी इस परमैश्वर्यरूप विभूति को और योग शक्ति को तत्त्व से जानता है वह निश्चल भक्ति - योग से युक्त हो जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूँ, मुझसे ही सब जगत चेष्टा करता है ऐसा समझ कर श्रद्धाऔर भक्ति से युक्त बुद्धिमान भक्त जन मुझ परमेश्वर को ही भजते हैं।वे निरंतर मुझ में मन लगाने वाले और मुझ में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्त जन मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव की जानते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए ही निरंतर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव में ही रमन करते हैं, उन निरंतर मेरे ध्यानादि में लगे हुए, प्रेम पूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्त्व ज्ञान रूप योग देता हूँ जिस से वे मुझको ही प्राप्त होते हैं और हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए उनके अंतःकरण में स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञान रूप अन्धकार को प्रकाशमय तत्व ज्ञान रूप दीपक द्वारा नष्ट कर देता हूँ।

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुन कर अर्जुन बोले, हे भगवन! आप परम ब्रह्म, परम धाम, और परम पवित्र हैं क्योंकि आपको सब ऋषि गण सनातन दिव्य पुरुष तथा देवों का भी आदि देव, अजन्मा और सर्व व्यापक कहते हैं, वैसे ही देवर्षि नारद, असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास भी कहते हैं और स्वयं आप भी मेरे प्रति कहते हैं।हे केशव! जो कुछ भी आप मेरे प्रति कहते हैं इस सबको मैं सत्य मानता हूँ। हे भगवन! आपके लीलामय स्वरूप को न तो दानव जाने हैं और न देवता ही।

हे भूतों को उत्पन्न करने वाले! हे भूतों के ईश्वर! हे देवों के देव! हे जगत के स्वामी! हे पुरुषोत्तम! आप स्वयं ही अपने से अपने आपको जानते हैं। इस लिए हे भगवन- आप ही अपनी दिव्य विभूतियों को सम्पूर्णता से कहने में समर्थ हैं, जिन विभूतियों के द्वारा आप इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं।हे योगेश्वर! किस प्रकार मैं आपको जानूं कि आप किन-किन भावों में आप मेरे द्वारा चिन्तन करने के योग्य हैं? हे जनार्दन! अपनी योग शक्ति और विभूति को फिर विस्तार पूर्वक कहिये क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है अर्थात् सुनने की उत्कंठा बनी रहती है।

श्री भगवान बोले- हे कुरुश्रेष्ठ! अब मैं जो मेरी दिव्य विभूतियाँ हैं उनको प्रधानता से कहूंगा क्योंकि मेरे विस्तार का अंत नहीं है। हे अर्जुन! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सब भूतों का आदि, अंत और मध्य भी मैं ही हूँ। मैं अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु, ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूँ, तथा मैं उनचास वायु देवताओं का तेज और नक्षत्रों का स्वामी चंद्रमा हूँ। वेदों में सामवेद हूँ, देवों में इंद्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ और भूत प्राणियों की चेतना अर्थात् जीवनी शक्ति हूँ। एकादश रुद्रों में शंकर हूँ, यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ, मैं आठ वसुओं में अग्नि हूँ और शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूँ और पुरोहितों में मुखिया बृहस्पति मुझको जान।

हे पार्थ! मैं सेनापतियों में स्कन्द, और जलाशयों में समुद्र हूँ। मैं महर्षियों में भृगु, शब्दों में एक अक्षर ओंकार हूँ, सब प्रकार के यज्ञों में जप –यज्ञ हूँ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पर्वत हूँ। मैं सब वृक्षों में पीपल, देव ऋषियों में नारद मुनि, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ, और हे अर्जुन! घोड़ों में अमृत के साथ उत्पन्न होने वाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथियों में ऐरावत नामक हाथी और मनुष्यों में राजा मुझको जान।

हे अर्जुन! मैं शास्त्रों में वज्र और गऊओं में कामधेनु हूँ, शास्त्रोक्त रीति से संतान की उत्पत्ति का हेतु कामदेव और सर्पों में सर्पराज वासुकी हूँ।मैं नागों में शेषनाग, जलचरों का अधिपति वरुण देवता हूँ, पितृों में अर्यमा नामक पितृ हूँ तथा शासन करने वालों में यमराज हूँ। मैं दैत्यों में प्रह्लाद, और गन ना करने वालों का समय हूँ तथा पशुओं में मृग राज सिंह हूँ और पक्षियों में गरुड़ हूँ। पवित्र करने वालों में वायु, शस्त्रधारियों में राम हूँ और मछलियों में मगर हूँ और नदियों में श्री भागीरथी गंगा जी हूँ और हे अर्जुन! सृष्टियों का आदि, अंत और मध्य भी मैं ही हूँ।

मैं विद्याओं में अध्यात्म विद्या और परस्पर विवाद करने वालों का तत्त्व निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद हूँ।अक्षरों में अकार हूँ और समासों में द्वन्द्व नामक समास हूँ, अक्षय काल अर्थात् कालों का भी काल महाकाल और सब ओर मुख वाला विराट स्वरूप, सबका धारणपोषण करने वाला भी मैं ही हूँ। मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और उत्पन्न होने वालों का उत्पत्ति –हेतु हूँ तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ।गायन करने योग्य श्रुतियों में बृहत्साम और छंदों में गायत्री छंद हूँ तथा महीनों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में बसंत मैं हूँ।मैं छल करने वालों में जुआ और

प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूँ। मैं जीतनेवालों की विजय हूँ, निश्चय करने वालों का निश्चय और सात्त्विक पुरुषों का सात्त्विक भाव हूँ। वृष्णिवंशियों में वासुदेव अर्थात् मैं स्वयंतेरा सखा, पांडवों में धनञ्जय अर्थात् तू, मुनियों में वेदव्यास और कवियों में शुक्राचार्य कवि मैं ही हूँ। मैं दमन करने वालों का दंड अर्थात् दमन करने की शक्ति हूँ, जीतने की इच्छा वालों की नीति हूँ, गुप्त रखने योग्य भावों का रक्षक मौन हूँ और ज्ञानवानों का तत्त्व ज्ञान मैं ही हूँ। जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूँ; क्योंकि ऐसा वह चर और अचर कोई भी भूत नहीं है जो मुझसे रहित हो।

हे परंतप! मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है, मैंने अपनी विभूतियों का विस्तार तो संक्षेप में कहा है, इसलिए हे अर्जुन! जो जो भी विभूति युक्त अर्थात् ऐश्वर्य युक्त, कान्तियुक्त और शक्ति युक्त वस्तु है, उस उसको तू मेरे तेज के अंश की अभिव्यक्ति ही जान।अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है, मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपनी योग शक्ति के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ।

इति श्री दशम अध्याय

एकादश अध्याय -विश्वरूप दर्शन योग

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो में दर्शयात्मानामव्ययम्।

हे प्रभो यदि मैं सही पात्र हूँ आपका यह रूप देखने का।
तो हे योगेश्वर! कराएँ मुझे दर्शन उस अविनाशी रूप का।।

भगवान का विश्वरूप दर्शन

इस प्रकार भगवान के वचन सुनकर अर्जुन बोले – मुझ पर अनुग्रह करके आपने जो यह अध्यात्म विषयक ज्ञान मुझे दिया है उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है, क्योंकि हे कमल नेत्र! मैंने आपसे भूतों की उत्पत्ति और प्रलय विस्तार पूर्वक सुने हैं और आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है। हे परमेश्वर! आप अपने को जैसा कहते हैं यह ठीक ऐसा ही है परन्तु आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज से युक्त ऐश्वर्य रूप को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ, इसीलिए हे प्रभो! यदि मेरे द्वारा आपका यह रूप देखने के योग्य आप मुझे उपयुक्त समझते हैं तो हे योगेश्वर! आप अपने इस अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराने की कृपा करें। श्री भगवान बोले –हे पार्थ! अब तू मेरे सैकड़ों, हजारों, नाना प्रकार के और नाना आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख।

हे अर्जुन! मुझ में आदित्यों को, आठ वसुओं को, एकादश रुद्रों को, दोनों अश्वनीकुमारों को और उनचास मरूद्गणो को देख तथा और भी पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख। हे अर्जुन! अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित चराचर सहित सम्पूर्ण जगत को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता हो, सो देख लो। परन्तु मुझको तू इन प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने में निस्संदेह समर्थ नहीं है; इस से मैं तुझे दिव्य अर्थात अलौकिक नेत्र देता हूँ उस से तू मेरी अलौकिक ईश्वरीय शक्ति को देख।

चित्र 15.1: श्रीकृष्ण द्वारा विराट भगवत्स्वरूप का दर्शन कराना

संजय बोले- हे राजन- महा योगेश्वर और पापों का नाश करने वाले भगवान ने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात अर्जुन को परम ऐश्वर्य युक्त दिव्य स्वरूप दिखलाया और उस अनेक मुख और नेत्रों से युक्त अनेक अद्भुत दर्शनों वाले, बहुत से दिव्य आभूषणों से युक्त और बहुत से दिव्य शस्त्रों को हाथ में उठाये हुए, दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुए और दिव्य गंध का सारे शरीर में लेप किये हुए, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमारहित और सब और मुख किये हुए विराट स्वरूप परम देव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा और हे राजन! आकाश में एक साथ उदय होने से उत्पन्न जो प्रकाश हो वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के समतुल्य कदाचित ही होवे, ऐसे आश्चर्यमय रूप को देखते हुए –पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उस समय अनेक प्रकार से विभक्त अर्थात् पृथक-पृथक सम्पूर्ण संसार को देवों के देव श्रीकृष्ण भगवान के उस शरीर में एक जगह स्थित

देखा और उसके अनंतर वह आश्चर्य से चकित और पुलकित –शरीरअर्जुन प्रकाशमय विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा-भक्ति सहित सर से प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोला। -हे देव! मैं आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को, कमल के आसन पर विराजित ब्रह्मा को और सम्पूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ।

और हे सम्पूर्ण जगत के स्वामिन्! आपको भुजा, पेट, मुख, नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूँ। हे विश्वरूप! मैं आपके न तो अंत को देखता हूँ न मध्य को और न आदि को ही। हे विष्णो! आपको मैं मुकुट युक्त, गदायुक्त चक्र युक्त तथा सब ओर से प्रकाशमय तेज के पुंज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, कठिनता से देखे जाने योग्य तथा सब ओर से अप्रमेय स्वरूप देखता हूँ। आप ही परम अक्षर, जानने योग्य परमात्मा हैं, आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं और आप ही अनादि पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है। हे परमेश्वर! मैं आपको आदि, अंत और मध्य से रहित, अनन्त सामर्थ्य से युक्त, अनन्त भुजा वाले, सूर्य, चन्द्र नेत्र वाले, प्रज्वलित अग्नि रूप मुख वाले और अपने तेज से इस जगत को सन्तप्त करते हुए देखता हूँ।

हे महात्मन्! यह स्वर्ग पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश, सब दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण हैं तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं और हे गोविन्द! वे ही देवताओं के समूह आप में प्रवेश करते हैं और कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े, आपके नाम और गुणों का उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धों के समुदाय 'कल्याण हो' ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं और हे परमेश्वर! जो ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य तथा आठ वसु, साध्य गण, विश्वेदेव, अश्वनीकुमार तथा मरूदग और पितरों का समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धों के समुदाय हैं –ये सब ही विस्मित होकर आपको देखते हैं। हे महा बाहो! आपके बहुत मुख और नेत्र वाले, बहुत हाथ और जंघा और पैरों वाले, बहुत उदरों वाले और बहुत सी दाढ़ों के कारण अत्यंत विकराल महान रूप को देखकर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं और मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ, क्योंकि हे विष्णो! आकाश को स्पर्श करने वाले, दैदीप्यमान, अनेक वर्णों से युक्त तथा फैलाए हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देखकर भयभीत अंतःकरण वाला मैं धीरज और शान्ति नहीं पाता हूँ।

आपकी दाढ़ों के कारण विकराल और प्रलय काल की अग्नि के समान प्रज्वलित आपके मुखों को देख कर मैं दिशाओं को नहीं जानता हूँ और सुख भी नहीं पाता हूँ, इसीलिए हे जगन्निवास! आप प्रसन्न हों, मैं देखता हूँ की वे सभी धृतराष्ट्र के पुत्र राजाओं के समुदाय सहित आप में प्रवेश कर रहे हैं और भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा वह कर्ण और हमारे पक्ष के भी प्रधान योद्धाओं के सहित, सब-के सब आपकी दाढ़ों के कारण विकराल भयानक मुखों में बड़े वेग से दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरों सहित आपके दांतों के बीच लगे हुए दिख रहे हैं। हे विश्वमूर्ते! जैसे नदियों के बहुत से जल प्रवाह स्वाभाविक ही समुद्र की और दोड़ते हैं अर्थात् समुद्र में प्रवेश करते हैं ठीक वैसे ही नरलोक के वीर भी आपके प्रज्वलित मुखों में प्रवेश कर रहे हैं अथवा जैसे पतंग नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में अति वेग से दौड़ते हुए प्रवेश करते हैं वैसे ही ये सब लोग भी अपने नाश के लिए आपके मुखों में अति वेग से दोड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैंऔर आप समस्त लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रास करते हुए सब ओर से बार-बार चाट रहे हैं, हे विष्णो! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत को तेज द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है।

हे भगवन्! कृपा करके मुझे बतलाइये कि आप उग्र रूपवाले कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार! आप प्रसन्न होइए। हे आदि पुरुष! मैं विशेष रूप से जानना चाहता हूँ, क्योंकि मैं आपकी प्रवृति को नहीं जानता। अर्जुन को उत्तर देते हुए श्रीभगवान् बोले –हे अर्जुन! मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकों को नष्ट करने के लिए प्रवृत हुआ हूँ इसलिए जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करने से भी इन सबका नाश हो जायेगा, अतएव तू उठ! यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीत कर धन धान्य से संपन्न राज्य को भोग! ये सब शूरवीर मेरे द्वारा पहले से ही मारे हुए हैं तू तो केवल निमित्त मात्र बन जा तथा द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, जयद्रथ, कर्ण और भी मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू मार, भय मत कर, निस्संदेह तू युद्ध में शत्रुओं को जीतेगा इसीलिए युद्ध कर।

इसके पश्चात संजय बोले –हे राजन! केशव भगवान के इस वचन को सुन कर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़ कर कांपता हुआ नमस्कार करके, फिर भी अत्यंत भयभीत होकर प्रणाम करके भगवान कृष्ण से गदगद वाणी में बोला –हे अन्तर्यामिन! यह योग्य ही है कि आपके नाम-गुण और प्रभाव के कीर्तन से जगत अति हर्षित हो रहा है और अनुराग को भी प्राप्त हो रहा है तथा भयभीत राक्षस लोग दिशाओं में भाग रहे हैं और सब सिद्धों के समुदाय आपको नमस्कार कर रहे हैं।

हे महात्मन्! ब्रह्मा के भी आदिकर्त्ता और सबसे बड़े आपके लिए ये कैसे नमस्ते न करें क्योंकि हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो सत्, असत् उनसे परे जो अक्षर अर्थात् सच्चिदानंद ब्रह्म है, वह आप ही हैं। हे प्रभो! आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं, आप इस जगत के परम आश्रय और जानने वाले और जानने योग्य तथा परम धाम हैं। हे अनन्तरूप! आपसे यह जगत व्याप्त और परिपूर्ण है।हे हरे! आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चंद्रमा, प्रजा के स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी परपिता हैं, आपके लिए हजारों बार नमस्कार हो, आपके लिए फिर भी बार-बार नमस्कार! और हे अनन्त सामर्थ्य वाले! आपके लिए आगे से, पीछे से भी नमस्कार! हे सर्वात्मन! आपके लिए सब ओर से नमस्कार हो क्योंकि अनन्त पराक्रम शाली आप सारे संसार को व्याप्त किये हुए हैं, इस से आप ही सर्वरूप हैं।

हे परमेश्वर! आपके इस प्रभाव को न जानते हुए कि आप मेरे सखा हैं ऐसा मान कर, प्रेम से अथवा प्रमाद से भी मैंने 'हे कृष्ण', 'हे यादव' `हे सखे'' इस प्रकार जो कुछ बिना सोचे समझे हठात कहा है और हे अच्युत्! आप जो मेरे द्वारा विनोद के लिए, विहार, शय्या, आसन और भोजनादि में, अकेले अथवा उन सखाओं के सामने भी अपमानित किये गए हैं वह सब अपराध अप्रमेयस्वरूप, अचिन्त्य प्रभाव वाले आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ। हे विश्वेश्वर! आप इस चराचर जगत के पिता और सबसे बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं, हे अनुपम प्रभाव वाले! तीनों लोकों में आपके समान दूसरा कोई नहीं है फिर अधिक कैसे हो सकता है? अतएव मैं शरीर को भली भाँति आपके चरणों में निवेदित कर, प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करता हूँ। हे देव! पिता जैसे पुत्र के, सखा जैसे सखा के, पति जैसे प्रियतमा पत्नी के अपराध सहन करते हैं वैसे ही आप भी मेरे अपराध सहन करने योग्य हैं। हे विश्वमूर्ते! मैं पहले से न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूप को देख कर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से व्याकुल

भी हो रहा है; इसीलिए आप उस अपने चतुर्भुज विष्णु रूप को ही मुझे दिखलाइये हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होइए।हे विष्णो! – मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूँ, इसीलिए हे विश्वरूप! हे सहस्रबाहो! आप उसी चतुर्भुज रूप से प्रकट होइए।

इस प्रकार अर्जुन की प्रार्थना सुनकर श्री भगवान बोले –हे अर्जुन! अनुग्रह पूर्वक मैंने आपने योग शक्ति के प्रभाव से यह मेरा परम तेजोमय सबका आदि और सीमा रहित विराट रूप तुझको दिखलाया है जिसे तेरे अतिरिक्त दूसरे किसी ने पहले कभी नहीं देखा, हे अर्जुन! मनुष्य लोक में इस प्रकार विश्वरूप वाला मैं न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तपों से ही तेरे अतिरिक्त देखा जा सकता हूँ। मेरे इस विकराल रूप को देख कर तुझ को व्याकुलता नहीं होनी चाहिए और मूढ़ भाव भी नहीं होना चाहिए, तू भय रहित और प्रीत वाला होकर उसी मेरे इस शंख, चक्र, गदा-पद्म युक्त चतुर्भुज रूप को देख। वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति इस प्रकार कह कर फिर अपने चतुर्भुज रूप को दिखलाया और फिर महात्मा श्रीकृष्ण ने सौम्य मूर्ति होकर इस भयभीत अर्जुन को धीरज दिया।

अर्जुन बोले-हे जनार्दन! आपके इस अति शांत मनुष्य रूप को देख कर मैं अब स्थिर- चित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो गया हूँ। इस प्रकार अर्जुन के वचन सुन कर श्री भगवान बोले-मेरा जो चतुर्भुज रूप तुमने देखा है यह सुदुर्दर्श है अर्थात् इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, देवता भी सदा इस रूप के दर्शन की अभिलाषा करते रहते हैं। हे अर्जुन! जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है इस प्रकार चतुर्भुज वाला मैं न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से ही देखा जा सकता हूँ। परन्तु हे परन्तप! अनन्य भक्ति के द्वारा यह चतुर्भुज वाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए, तत्त्व से जानने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी योग्य हूँ।

अनन्य भक्ति का स्वरूप

हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिए समस्त कर्तव्य- कर्मों को करने वाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्ति रहित है, सम्पूर्ण भूत-प्राणियों में वैर-भाव से रहित है, वह अनन्य-भक्ति युक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

इति श्री एकादश अध्याय

द्वादश अध्याय -भक्ति योग

विश्वरूप दर्शन के बाद अर्जुन बोले –

हे मनमोहन! जो अनन्य प्रेमी भक्त जन पूर्वोक्त प्रकार से निरंतर आपके भजन ध्यान में लगे रहकर आपके सगुण साकार रूप को और दूसरे केवल अविनाशी सच्चिदानंद घन निराकार ब्रह्म को ही अति श्रेष्ठ मानते हैं उन दोनों प्रकार के उपासकों में अति उत्तम योग वेत्ता कौन है?

श्री भगवान बोले –

मुझ में मन को एकाग्र कर के निरंतर मेरे ध्यान पूजन में लगे हुए जो भक्त जन अति श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मुझको योगियों में अति उत्तम योगी मान्य हैं। परन्तु जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को भली प्रकार वश में कर के मन-बुद्धि से परे सर्व व्यापी, अकथनीय स्वरूप, सदा एकरस रहने वाले, अचल, नित्य, निराकार, अविनाशी सच्चिदानंद घन परमात्मा को निरंतर एकीभाव से, ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूत प्राणियों के हित में लगे और सब में समान भाव वाले योगी भी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

किन्तु – उन सचिदानंदघन निराकार ब्रह्म में आसक्ति वाले पुरुषों के साधन में परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियों के द्वारा अव्यक्त-विषयक गति दुख पूर्वक कठिन परिश्रम से प्राप्त की जाती है, परन्तु जो मेरे परायण रहने वाले भक्त -जन सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण कर के मुझ सगुण रूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्ति -भाव से निरंतर चिंतन करते हुए भजते हैं –हे अर्जुन! उन मुझ में चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्त जनों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।

इसीलिए हे अर्जुन! तू- मुझमें मन को लगा और मुझ में ही बुद्धि को लगा; इसके उपरान्त तू मुझ में ही निवास करेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यदि तू मुझ में मन को अचल स्थापन को समर्थ नहीं है तो हे अर्जुन! अभ्यास रूप योग के द्वारा मुझको प्राप्त होने के लिए इच्छा कर और यदि तू अभ्यास में भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिए ही कर्म करने के ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्ति रूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा और यदि मेरी प्राप्ति रूप योग के आश्रित होकर उपर्युक्त साधन करने में भी असमर्थ है तो मन बुद्धि पर विजय प्राप्त करके सब कर्मों के फल का त्याग कर। मर्म को न जान कर किये गये अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से मुझ परमेश्वर का ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यान से भी सब कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है क्योंकि त्याग से तत्काल ही शान्ति होती है।

इस प्रकार शान्ति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों में द्वेष-भाव से रहित, स्वार्थ रहित सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख-दू:खों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वालों को भी अभय देने वाला है; तथा जो योगी सदा संतुष्ट है, मन, शरीर व इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए है और मुझ में दृढ़ निश्चय वाला है –वह मुझ में अर्पित मन-बुद्धि वाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादि से रहित है –वह भक्त मुझे प्रिय है।

जो पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर- भीतर से शुद्ध, चतुर, पक्ष–पात से रहित और दुखों से छूटा हुआ है –वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सब कर्मों का त्यागी है –वह भक्ति- युक्त पुरुष मुझको प्रिय है और जो शत्रु -मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सर्दी, गरमी और सुख-दू:खादि द्वंदों में सम है और आसक्ति से रहित है –तथा जो निंदा-स्तुति को समान समझने वाला। मनन शील और जिस किसी भी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान

में ममता और आसक्ति से रहित है वह स्थिर- बुद्धि भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है परन्तु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे गए धर्ममय अमृत को निष्काम प्रेम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं।

इति श्री द्वादश अध्याय

त्रयोदश अध्याय -क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग

हे अर्जुन! यह शरीर **'क्षेत्र'** इस नाम से कहा जाता है और इसको जो जानता है उसको 'क्षेत्रज्ञ' नाम से उनके तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी जन कहते हैं। हे अर्जुन! सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मुझ को ही जान और क्षेत्र –क्षेत्रज्ञ का अर्थात् विकार रहित प्रकृति का और पुरुष को जो तत्त्व से जानता है वह ज्ञान है –ऐसा मेरा मत है। इसीलिए –वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से जो हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी और जो जिस प्रभाव वाला है वह सब मुझसे संक्षेप में सुन।यह क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का तत्त्व –ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है और विविध मन्त्रों द्वारा भी विभाग पूर्वक कहा गया है तथा भली-भाँति निश्चय किये हुए युक्ति-युक्त ब्रह्म सूत्र के पदों द्वारा कहा गया है।

क्षेत्र के स्वरूप का कथन

पांच महा भूत–अर्थात् पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु, अहंकार, बुद्धि, और मूल प्रकृति भी तथा दस इन्द्रियाँ, एक मन और पांच इन्द्रियों के विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध –तथा-इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल देह का पिण्ड, चेतना और धृति –इस प्रकार विकारों सहित यह क्षेत्र संक्षेप में कहा गया है।

दस इन्द्रियाँ:- श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण एवंहस्त, पाद, उपस्थ और गुदा

ज्ञान अर्थात् तत्त्व - ज्ञान (ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान)के नौ साधन या गुण

अमानित्वम-श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव

अदम्भित्वं-दम्भाचरण का अभाव, अहिंसा –किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार न सताना,

क्षान्ति –क्षमा भाव

आर्जवं –मन, वाणी आदि की सरलता

आचार्योपसना –श्रद्धा सहित गुरु की सेवा

शौचं –बाहर-भीतर की शुद्धि

स्थैर्यं-अंत:करण की स्थिरता

आत्म्विनिग्रह –मन इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह तथा इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव, जन्म, मृत्यु, ज़रा और रोग आदि में दुख और दोषों का बार-बार विचार करना तथा पुत्र-स्त्री, घर आदि में आसक्ति का अभाव, प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का समान रहना और मुझ परमात्मा में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना।

अध्यात्म ज्ञान में नित्य स्थिति, और तत्त्व ज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को ही देखना- यह सब तो ज्ञान है और जो इस से विपरीत है, वह अज्ञान है; ऐसा कहा गया है।

जो जानने योग्य है तथा जिसे जानकार मनुष्य परमानंद को प्राप्त होता है उसको भली भाँति कहूंगा। यह अनादि वाला परम ब्रह्म न सत् ही कहा गया है और न असत् ही।

परमात्मा के स्वरूप का कथन

वह सब ओर हाथ पैर वाला, सब ओर नेत्र, सर और मुख वाला तथा सब ओर कान वाला है क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है। वह सब इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है परन्तु सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्ति रहित होने पर भी सब का धारणपोषण करने वाला और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है।

रामचरितमानस में भी संत तुलसीदास द्वारा प्रभु के स्वरूप का उल्लेख इस प्रकार किया है-

बिनु पद चलइ सुनइ बिन काना।
कर बिन करम करइ बिधि नाना।।
आनन् रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड जोगी। 117/3।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।

गृहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी। 117/4।

व्याख्या-

यह ब्रह्म बिना ही पैर के चलता है। बिना कान के ही सुनता है। बिना हाथ के ही सब कार्य करता है। बिना मुख-जिह्वा के सारे छहों रसों का आनंद लेता है।

बिना वाणी के ही बहुत योग्य वक्ता है। वह बिना शरीर त्वचा के स्पर्श करता है। बिना आँखों के ही सब कुछ देखता है, बिना नाक के सब गंधों को सूंघता है।उस ब्रह्म की करनी सब प्रकार से अलौकिक है, जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती है।

चराचर सब भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचर भी वही है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में और दूर में भी स्थित वही है। तथा वह परमात्मा –विभाग रहित एक रूप से आकाश के सद्दश परिपूर्ण होने पर भी चराचर सम्पूर्ण भूतों में विभक्त- सा प्रतीत होता है तथा वह जानने योग्य परमात्मा विष्णु रूप से भूतों को धारणपोषण करने वाला और रुद्र रूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मा रूप से सबको उत्पन्न करने वाला है।

वह ब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अति परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोध स्वरूप, जानने के योग्य एवं तत्त्व ज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सकेहृदय में विशेष रूप से स्थित है। हे अर्जुन! इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान और जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप संक्षेप में कहा गया है। मेरा भक्त इसको जानकार मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

हे अर्जुन! प्रकृति और पुरुष –इन दोनों को तू अनादि जान और राग- द्वेषादि विकारों तथा त्रिगुण आदि पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ जान, क्योंकि कार्य और करन को उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुख-दू:खों के भोगने में हेतु कही गई है, परन्तु प्रकृति में स्थित पुरुष, प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता है और गुणों का संग ही इस जीवात्मा के अच्छी- बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है।

परमात्मा और आत्मा की एकता का प्रतिपादन

इस देह में यह आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है, वही साक्षी होने से उप द्दष्टा, यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमन्ता, सबका धारण–पोषण करने वाला होने से भर्ता, जीव रूप से भोक्ता, ब्रह्मादि का महेश्वर होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानंद घन होने से परमात्मा, ऐसा कहा गया है। इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्त्व से जानता है वह सब प्रकार से कर्तव्य–कर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता।

हे अर्जुन! उस परम पुरुष परमात्मा को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं, परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् अन्य कितने ही ज्ञानयोग के द्वारा और दूसरे कितने ही कर्म योग के द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं।परन्तु अन्य दूसरे मंदबुद्धि वाले पुरुष इस प्रकार न जानते हुए तत्त्व के जानने वाले पुरुषों से ही सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्यु रूप संसार से निस्संदेह तर जाते हैं।

हे अर्जुन! यावन्मात्र जितने भी स्थावरजंगम प्राणी उत्पन्न होते हैं उन सबको तू क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न जान। इस प्रकार जान कर –जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में परमेश्वर को अविनाशी और समभाव से स्थित देखता है वही यथार्थ देखता है; क्योंकि जो पुरुष सब में समभाव से स्थित परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा अपने को नष्ट नहीं करता, इससे वह परम गति को प्राप्त होता है और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति के द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और आत्मा को अकर्त्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है।

जिस क्षण यह पुरुष भूतों के पृथक-पृथक भावों को एक परमात्मा में ही स्थित तथा उस परमात्मा से ही सब भूतों का विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानंद घन परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। हे अर्जुन! अनादि और निर्गुण होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित होने पर भी वास्तव में न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है।

जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देह में सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होने के कारण देह के गुणों से लिप्त नहीं होता है।

हे अर्जुन! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा कार्य सहित प्रकृति से मुक्त होने को जो पुरुष ज्ञान-नेत्रों द्वारा तत्त्व से जानते हैं वे महात्मा जन परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

इति श्री क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग नामक त्रयोदश अध्याय

चतुर्दश अध्याय -गुणत्रय विभाग योग

उसके पश्चात श्री भगवान बोले-

अर्जुन! ज्ञानों में भी अति उत्तम उस परम ज्ञान को मैं फिर कहूंगा जिसको जानकार सब मुनि जन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं, हे अर्जुन! इस ज्ञान को आश्रय करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुन: उत्पन्न नहीं होते और प्रलय काल में भी व्याकुल नहीं होते।

हे अर्जुन! मेरी महता- ब्रह्म रूपमूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतन-समुदाय रूप गर्भ को स्थापन करता हूँ, इस प्रकार उस जड़-चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है तथा नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं, प्रकृति तो उन सबकी गर्भ धारण करने वाली माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूँ।

प्रकृति से उत्पन्न तीन गुण हे अर्जुन! सत्त्वगुण, रजोगुण, और तमोगुण ये प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं।

सत्त्व गुण:- हे निष्पाप! इन तीनों गुणों में सत्त्व गुण तो निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकार रहित है, यह सुख से और ज्ञान के संबंध से अर्थात् उसके अभिमान से बांधता है।

रजोगुण :-हे अर्जुन! राग रूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न जान, यह जीवात्मा को कर्मों के और उनके फल के सम्बन्ध से बांधता है।

तमोगुण :- हे अर्जुन! सब देहाभिमानियों को मोहित करने वाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान। यह जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बांधता है।

क्योंकि हे अर्जुन! सत्त्व गुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण तो ज्ञान को आच्छादित करके प्रमाद में भी लगाता है।

दूसरे गुणों को दबाकर किसी एक गुण के बढ़ने का प्रकरण

हे अर्जुन! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्व गुण, सत्त्व गुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण, वैसे ही सत्त्व गुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण होता है अर्थात् बढ़ता है।

सत्त्व गुण की वृद्धि के लक्षण

जिस समय इस देह में तथा अंतःकरण और इन्द्रियों में चेतनताऔर विवेक शक्ति उत्पन्न होती है, उस समय ऐसा जानना चाहिए की सत्त्व गुण बढ़ा है।

रजोगुण की वृद्धि के लक्षण

हे अर्जुन! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, प्रवृत्ति (स्वार्थ बुद्धि से), कर्मों का आरम्भ (सकाम भाव से), अशांति और विषय-भोगों की लालसा –ये सब उत्पन्न होते है।

तमोगुण की वृद्धि के लक्षण

हे अर्जुन! तमोगुण के बढ़ने पर अंतःकरण और इन्द्रियों में अप्रकाश, कर्तव्यों-कर्मों में अप्रवृति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि अंतःकरण की मोहिनी वृत्तियाँ ये सब ही उत्पन्न होते हैं।

सत्त्व गुण की वृद्धि के समय में मरने वालों की गति का वर्णन

हे अर्जुन! जब यह मनुष्य सत्त्व गुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है तब तो उत्तम कर्म करने वालों के निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है।

रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि के समय मरने वाले की गति का वर्णन

रजोगुण के बढ़ने पर मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है तथा तमोगुण की वृद्धि के समय मृत्यु को प्राप्त मनुष्य कीट, पशु आदि मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है। क्योंकि श्रेष्ठ कर्म का फल तो सात्त्विक अर्थात् सुख, शान्ति, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है। किन्तु राजस कर्म का फल दुख एवं तामस कर्म का फल अज्ञान कहा है। सत्त्व गुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से निस्संदेह लोभ तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।

इसलिए सत्त्व गुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं, राजस पुरुष मध्य में अर्थात् मनुष्य लोक में रहते हैं तथा तमोगुण में स्थित पुरुष अधोगति को अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनि को तथा नरकों को प्राप्त होते हैं।

हे अर्जुन! जिस समय द्रष्टा तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है और तीन गुणों से अत्यंत परे सच्चिदानंद घन रूप मुझ परमात्मा को जानता है उस समय वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है। तथा वह पुरुष शरीर की उत्पत्ति रूप तीनों गुणों का उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सबप्रकार के दुखों से मुक्त होके परमानंद को प्राप्त होता है।

अर्जुन बोले- हे पुरुषोत्तम! इन तीन गुणों से अतीत पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है और किस प्रकार के आचरण वाला होता है तथा हे प्रभु! मनुष्य किन उपायों से इन तीन गुणों से अतीत हो सकता है?

गुणातीत पुरुष के लक्षण

हे अर्जुन! जो पुरुष सत्त्व गुण के कार्य रूप प्रकाश को और रजोगुण के कार्य रूप प्रवृति को तथा तमोगुण के कार्य रूप मोह को भी न तो प्रकृत होने पर उनसे द्वेष करता है, न उनके निवृत होने पर उनकी इच्छा करता है, जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता।

गुण ही गुणों में बरतते हैं ऐसा समझता हुआ परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से कभी विचलित नहीं होता, जो सुख-दुःख को समान समझने वाला, मिट्टी, पत्थर व स्वर्ण को समान समझने वाला, प्रिय-अप्रिय को सामान मानने वाला, अपनी निंदा –स्तुति में भी एक सा रहता है तथा निरंतर आत्म भाव में स्थित है, अपने मान अपमान में सम रहता है, वैरी और मित्र के पक्ष में सम है, और अपने कर्मों में कर्तापन के अभिमान से रहित है वह पुरुष गुणातीत कहलाता है।

गुणातीत होने का उपाय

जो पुरुष मुझ परमात्मा को अव्यभिचारी भक्ति अर्थात् अनन्य भक्ति भाव से भजता है वह इन तीन गुणों को भली-भाँति लांघ कर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।हे अर्जुन! अविनाशी परब्रह्म का, अमृत रूप नित्य धर्म का, अखंड रस का, आनंद का एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ।

इति श्री चतुर्दश अध्याय

पंचदश अध्याय -पुरुषोत्तम योग

अध्यात्म –ज्ञान के अंतर्गत इस अध्याय का प्रारम्भ संसार को अश्वत्थ वृक्ष मान कर अति रोचक ढंग से करते हैं।

हे अर्जुन! आदि पुरुष परमेश्वर रूपऊर्ध्व मूल–और ब्रह्मा रूपअधः मूल वाले संसार रूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहा जाता है ;वेद जिसके पत्ते हैं, जो पुरुष मूल सहित इस संसार वृक्ष को तत्त्व से जानता है वही इस का जानने वाला है।

इस अनुपम संसार वृक्ष की तीन गुण रूप जल से बढ़ी हुई शाखाएं, विषय भोग रूप कोपलों वाली, देव, मनुष्य और त्रियक आदि योनिरूप शाखाएं नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्य-लोक में कर्मानुसार अहंता, ममता और वासना रूपी जड़ें भी नीचे और ऊपर सर्वत्र सब लोकों में फैली हुई हैं।

परन्तु इस संसार वृक्ष का जैसा रूप कहा है, वैसा नहीं पाया जाता है, क्योंकि न तो इसका आदि है न ही मध्य है और न ही अंत है और न स्थति ही है इसीलिए इस अति द्दढ़ अहंता, ममता और वासना रूप मूल वाले वृक्ष को वैराग्य रूप शस्त्र द्वारा काटकर उसके पश्चात उस परम पद परमेश्वर को खोजना चाहिए, जिसमें गए पुरुष फिर लोट कर संसार में नहीं आते।

जिस परमेश्वर से इस पुरातन संसार की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है मैं उसी आदि पुरुष नारायण की शरण में हूं-इस प्रकार द्दढ़ निश्चय करके उस परमात्मा का मनन करना चाहिए। जिसका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्ति रूप को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूप में नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएं पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी हैं –वे सुख-दुःख द्वंदों से विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते है और जिस परम पद को पाकर मनुष्य लोट कर संसार में नहीं आते, उस स्वयंप्रकाश परम पद को न सूर्य ही प्रकाशित कर सकता है न चंद्रमा और न अग्नि ही, वही मेरा परम धाम है।इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है

रामचरितमानस में भी उल्लेख है –

ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।116-ख -1।

अर्थात् जीव ईश्वर का अंश है। अतएव यह अविनाशी चेतन निर्मल और स्वभाव से सुख की राशि है।

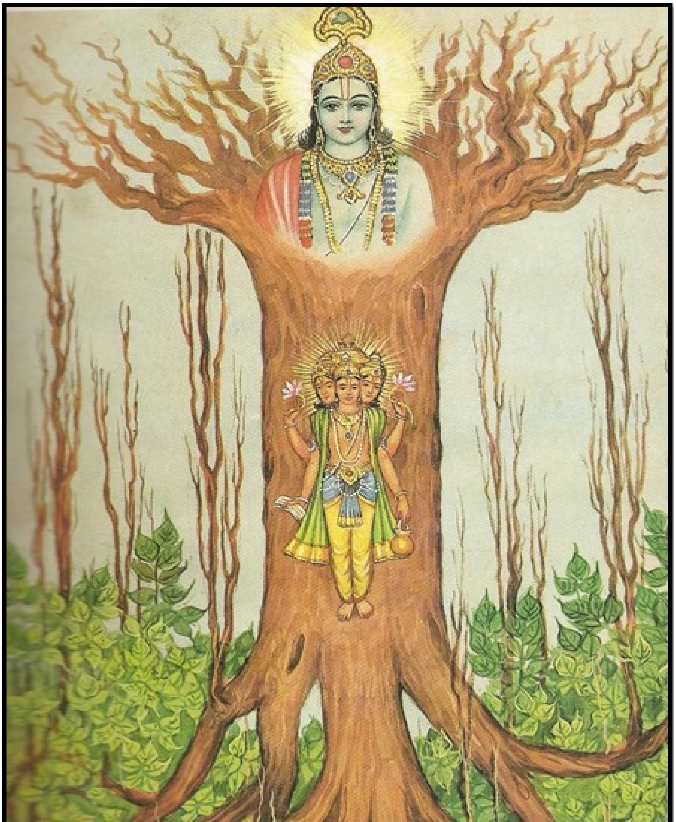

चित्र 19.1: अश्वत्थ वृक्ष के रूपक से संसार का वर्णन

यही जीवात्मा प्रकृति स्थित मन और पांचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है –इस प्रकार जैसे वायु गंधक के स्थान से गंध को ग्रहण करके ले जाता है वैसे ही देहादि का स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीर का त्याग करता है, उस से इन मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त करता है उसमें जाता है।

यह जीवात्मा शरीर में स्थित हुआ श्रोत्र, चक्षु, त्वचा, रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके अर्थात् इनके सहारे से ही विषयों का सेवन करता है, परन्तु शरीर को छोड़ कर जाते समय अथवा शरीर में रहते हुए अथवा विषयों को भोगते हुए को इस प्रकार तीनों गुणों से युक्त हुए को अज्ञानी जन नहीं जानते, केवल ज्ञान रूप नेत्रों वाले योगी जन ही तत्त्व से जानते हैं। यत्न कर ने वाले योगी जनहृदय में स्थित इस आत्मा को तत्त्व से जानते है किन्तु जिन अज्ञानियों का अंतःकरण अशुद्ध है वे यत्न करने पर भी इस आत्मा को नहीं जानते।

हे अर्जुन! सूर्य में स्थित जो तेज समस्त जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चंद्रमा और अग्नि में है उस सबको तू मेरा तेज ही जान। मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ और रसमय या अमृतमय चंद्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियों को अर्थात् वनस्पतियों का पोषण करता हूँ, मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित रह कर प्राण और अपान से संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह, चोष्य भोजन को पचाता हूँ। मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ, मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है, सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ, वेदों का ज्ञाता और वेदान्त कर्ता भी मैं ही हूँ।

हे अर्जुन! इस संसार में नाशवान और अविनाशी दो प्रकार के पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर तो नाशवान और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है तथा इन दोनों से पृथक उत्तम पुरुष तो अन्य ही है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है और अविनाशी परमात्मा और परमेश्वर कहा गया है।

क्योंकि मैं(परमात्मा) नाशवान जड़ वर्ग से तो सर्वथा अतीत हूँ और अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ इसीलिए लोक में और वेदों में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्व से पुरुषोत्तम जानता है वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरंतर मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है। हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह अति रहस्य युक्त, गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है, इसको तत्त्व से जान कर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।

इति श्री पंचदश अध्याय

षोडश अध्याय -देवासुर सम्पद विभाग योग

दैवी संपदा को प्राप्त पुरुष के लक्षण

श्री भगवान बोले – हे अर्जुन! देवी संपदा जन लोगों को प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक -पृथक कहता हूँ -जिन में भय का सर्वथा अभाव, अंतःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्त्व ज्ञान के लिए ध्यान योग में निरंतर दृढ़ स्थिति, सात्त्विक दान, इन्द्रियों का दमन, भगवान, देवताओं और गुरुजनों की पूजा, अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण, वेद शास्त्रों का पठन-पाठन, भगवान के नाम और गुणों का कीर्तन, स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहना, शरीर तथा इन्द्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता, मन, वाणी और शरीर से किसी को भी किसी भी प्रकार से कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, कर्मों में कर्त्ता पन के अभिमान का त्याग, चित्त की चंचलता का अभाव, किसी की भी निंदा न करना, सब भूत –प्राणियों में हेतु रहित दया, इन्द्रियों का विषयों से संयोग होने पर भी उनमें आसक्ति न होना, कोमलता, लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टा का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर की शुद्धि और किसी में भी शत्रु भाव न होना, अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव है –हे अर्जुन! ये सब दैवी-सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

आसुरी सम्पदा का निरूपण

हे पार्थ! दंभ, घमंड और अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान –ये सब आसुरी संपदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं; दैवी संपदा मुक्ति के लिए और आसुरी सम्पदा बंधने के लिए कही गई है –अर्जुन! तू शोक न कर क्योंकि तू तो दैवी सम्पदा के साथ पैदा हुआ है और हे अर्जुन! इस लोक में मनुष्य समुदाय दो प्रकार का है –एक दैवी प्रकृति वाला दूसरा आसुरी प्रकृति वाला। उनमें दैवी प्रकृति वाला तो विस्तार से कहा गया है, आसुरी समुदाय के मनुष्य समुदाय को भी विस्तार से सुन।

चित्र 20.1: श्री कृष्ण का अर्जुन को मूल मंत्र

हे अर्जुन! आसुर स्वभाव वाले प्रवृति और निवृति को नहीं जानते, उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न ही श्रेष्ठ आचरण है और न सत्य भाषण ही है तथा वे आसुरी प्रकृति वाले पुरुष कहते हैं की जगत आश्रय रहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वर के, अपने आप स्त्री-पुरुष के संयोग से बना है अतएव काम ही इसका कारण है, इसके सिवा और क्या है? इस प्रकार इस मिथ्या ज्ञान को अवलंबन करके जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है तथा जिनकी बुद्धि मंद है, वे सब का अपकार करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत के नाश के लिए ही समर्थ होते हैं। वे दंभ, मान और मद से युक्त मनुष्य, किसी प्रकार भी पूर्ण न होने वाली कामनाओं का आश्रय अज्ञान पूर्वक मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों को ग्रहण करके संसार में विचरण करते हैं और वे मृत्यु पर्यंत रहने वाली असंख्य चिताओ को आश्रय लेने वाले, विषय भोगों में तत्पर रहने वाले और 'इतना ही सुख है' इस प्रकार मानने वाले होते हैं। इसीलिए वे आशा की सैकड़ों फांसियों में बंधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर विषय भोगों के लिए अन्याय पूर्वक अनादि पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।वे सोचा करते हैं कि –मैंने आज यह प्राप्त कर लिया है और अब इस मनोरथ को प्राप्त कर लूँगा, मेरे पास इतना धन है और फिर और भी यह बढ़ जायेगा।वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा।मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ, मैं सब सिद्धियों से युक्त हूँ और बलवान हूँ तथा सुखी हूँ।

मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुंब वाला हूँ।मेरे सामान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूंगा, दान दूंगा, आमोद, प्रमोद करूंगा। इस प्रकार अज्ञान से मोहित रहने वाले तथा अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले, मोहरूप जाल से समावृत और विषयों में अत्यंत आसक्त आसुर लोग महान अपवित्र नरक में गिरते हैं। वे अपने आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले, घमंडी पुरुष, धन और मान से युक्त होकर नाम मात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से शास्त्र विधि रहित यजन करते हैं तथा वे अहंकार, घमंड, कामना और क्रोधादि के परायण तथा दूसरों की निंदा करने वाले अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी से द्वेष करने वाले हैं। ऐसे द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूर कर्मीनामों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ। इसलिए हे अर्जुन! वे मूढ़ मुझे प्राप्त न होकर ही जन्म-जन्म में आसुरी योनि को ही प्राप्त होते हैं और फिर उस से भी अति नीच गति को प्राप्त होते हैं अर्थात घोर नरकों में पड़ते हैं। हे अर्जुन! काम, क्रोध तथा लोभ –ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् अधोगति में ले जाने वाले हैं, अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिए। क्योंकि हे अर्जुन! इन तीन द्वारों से मुक्त पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है इस से परम गति को जाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता ह

राम चरितमानस में भी उल्लेख है-

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहिं जेहिं संत।(सुन्दरकाण्ड 38।)

अर्थात् काम, क्रोध, मद और लोभ –ये सब नरक के रास्ते हैं। इन सब को छोड़ कर राम को भजें, जिन्हें संत जन भजते हैं।

जो पुरुष शास्त्र विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से मन माना आचरण करता है वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है न परम गति को और न सुख को ही। इस से तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाणन है, ऐसा जानकार तू शास्त्र विधि से कर्म करने योग्य है।

इति श्री षोडश अध्याय

सप्तदश अध्याय -श्रद्धात्रय विभाग योग

भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों पर अर्जुन ने प्रश्न किया –हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्र विधि के बिना देवादि का पूजन करते हैं उनकी स्थिति कौन सी है- सात्त्विकी, राजसी या तामसी ?

श्री भगवान् बोले –हे अर्जुन! मनुष्यों की शास्त्र विधि बिना स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा भी तीन प्रकार की प्रकृति प्रदत्त गुणों की तरह सात्त्विकी, राजसी और तामसी उनको तू मुझसे सुन। हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंतःकरण के अनुरूप होती है यह पुरुष श्रद्धा मय है इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है वह स्वयम् भी वही है।उनमें सात्त्विक पुरुष देवों को पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसों को और तामस पुरुष प्रेत और भूत गणों को पूजते हैं। और हे अर्जुन! जो मनुष्य शर्विधि से रहित केवल मन: कल्पित घोर तप को तपते हैं तथा दंभ, अहंकार से युक्त तथा कामना, आसक्ति और बल के अभिमान से भी युक्त हैं तथा जो शरीर रूप स्थित भूत- समुदाय को और अंतःकरणस्थित मुझ परमात्मा को भी कृश करने वाले हैं। उन ज्ञानियों को तू असुर स्वभाव वाले ही जान।

हे अर्जुन जैसे श्रद्धा तीन प्रकार की होती है वैसे ही भोजन भी सबको अपनी-अपनी रूचि के अनुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप, दान भी तीन –तीन प्रकार के होते हैं उनके पृथक-पृथक भेद को तू मुझसे सुन।

सात्त्विक आहार के लक्षण :-आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, चिकने, स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय –ऐसे आहार सात्त्विक स्वभाव वाले पुरुष को प्रिय होते हैं।

राजस आहार के लक्षण :-कड़वे, खट्टे, लवण युक्त, बहुत गर्म, तीखे, रूखे, डाह कारक और दुःख, चिंता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।

तामस आहार के लक्षण :-जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धियुक्त, बासी और उच्छिष्ठ है तथा अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुषों को प्रिय होता है।

सात्त्विक यज्ञ के लक्षण :-हे अर्जुन! जो शास्त्र विधि से नियत, यज्ञ करना ही कर्तव्य है इस प्रकार मन को समाधान करके, फल न चाहने वलों द्वारा किया जाता है वह सात्त्विक यज्ञ है।

राजस यज्ञ के लक्षण :-हे अर्जुन! केवल दंभाचरण के ही लिए अतः फल को भी द्दष्टि में रखते हुए जो यज्ञ किया जाता है उस यज्ञ को तू राजस जान।

तामस यज्ञ के लक्षण :- शास्त्र विधि के बिना अन्न दान से रहित, बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के, बिना श्रद्धा के किये जाने वाले यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

शारीरिक तप के लक्षण :- हे अर्जुन! देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी जन का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा –यह शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है।

वाणी संबंधी तप के लक्षण :- जो उद्वेग न करने वाला प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा वेद-शास्त्रों के पठन एवं परमेश्वर के नाम और जप का अभ्यास है –वही वाणी सम्बन्धी तप कहलाता है। मन की प्रसन्नता, शांत भाव, भगवच्चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अंतःकरण के भावों की भली-भाँति पवित्रता –इस प्रकार यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है। परन्तु हे अर्जुन! फल को न चाहने वाले योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से किये हुए उस (पूर्वोक्त) तीन प्रकार के तप को सात्त्विक तप कहते हैं।

राजस तप के लक्षण :-जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिए तथा अन्य किसी स्वार्थ के लिए भी स्वभाव से या पाखण्ड से किया जाता है वह अनिश्चित एवं क्षणिक फल वाला तप कहा जाता है। और जो ताप मूढ़तापूर्वक हठ से मन, शरीर और वाणी की पीड़ा के सहित अथवा दूसरे का अनिष्ट करने के लिए किया जाता है वह तप तामस कहा गया है।

सात्त्विक दान के लक्षण :- दान देना ही कर्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर उपकार न करने वाले के प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

राजस दान :-किन्तु जो दान क्लेश पूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से, अथवा फल को दृष्टि में रख कर दिया जाता है वह दान राजसी कहा गया है।

तामस दान :- जो दान बिना सत्कार के, अथवा तिरस्कार पूर्वक, अयोग्य देश-काल में, और कुपात्र को दिया जाता है वह दान तामस कहा गया है।

ॐ तत्सत् की महिमा

हे अर्जुन! ॐ तत् सत्–ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानंद भगवान् का नाम कहा है; उसी से सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञादि रचे गए।

ऊंकार का प्रयोग वेद मंत्रों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्र विधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएं सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके की जाती हैं।

तत शब्द का प्रयोग, अर्थात् तत् नाम से कहे जाने वाले परमात्मा का ही यह सब है इस भाव से फल को न चाहकर नाना प्रकार की यज्ञ, तप रूप क्रियाएं तथा दान रूप क्रियाएँ मोक्ष की इच्छा वाले पुरुषों द्वारा की जाती हैं।

सत् शब्द का प्रयोग, सत् इस प्रकार यह परमात्मा का नाम सत्य भाव से और श्रेष्ठ भाव से प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्म में भी सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है तथा यज्ञ, दान और तप में जो स्थिति है वह भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है और परमात्मा के लिए किया गया कर्म निश्चय पूर्वक सत्-ऐसे कहा गया है।

हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, तप हुआ तप और जो कुछ भी किया गया कर्म है वह समस्त 'असत्'इस प्रकार कहा जाता है, इसलिए वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही।

इति श्री सप्तदश अध्याय

अष्टादश अध्याय -मोक्ष संन्यास योग

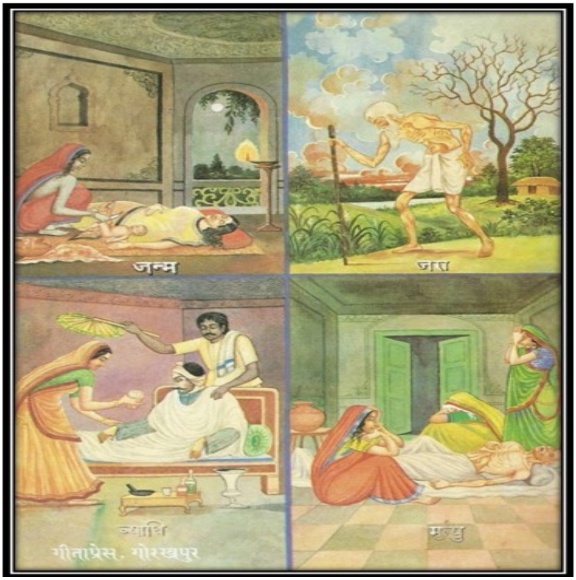

चित्र 22.1: मनुष्य जीवन चक्र

अर्जुन बोले- हे महा बाहो! हे अंतर्यामी! हे वासुदेव! मैं संन्यास और त्याग के तत्त्व को पृथक–पृथक जानना चाहता हूँ। श्री भगवान् बोले – हे अर्जुन! कितने ही पंडित तो सकाम कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं तथा दूसरे विचारशील पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं तथा कई एक ऐसा कहते हैं कि कर्म मात्र दोष युक्त है इसलिए त्यागने योग्य है और दूसरेविद्वान कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं

त्याग के विषय में भगवान् का कथन

हे पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन! संन्यास और त्याग- इन दोनों में से पहले तू त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुन। त्याग (सात्त्विक, राजस और तामस-भेद से) तीन प्रकार का कहा गया है।

यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाओं के त्याग का निषेध

यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करने योग्य नहीं हैं। बल्कि यह तो आवश्यक कर्तव्य है; क्योंकि यज्ञ, दान और तप तो बुद्धिमान मनुष्यों को पवित्र करने वाले हैं।

त्याग के विषय में भगवान् का मत

हे पार्थ! यज्ञ, दान और तप रूप कर्मों तथा इन कर्तव्य कर्मों को अवश्य करना चाहिए, त्याग तो आसक्ति और कर्म फलों का अवश्य करना चाहिए, यह मेरा निश्चित मत है।

तामस त्याग के लक्षण

नियत कर्म अर्थात् नित्य के स्वाभाविक कर्म का स्वरूप से त्याग उचित नहीं है इसलिए मोह (अज्ञान) के कारण उनका त्याग कर देना तामस त्याग कहा गया है।

राजस त्याग के लक्षण

और यदि कोई मनुष्य जो कुछ कर्म है वह सब दूःखरूप ही है ऐसा समझ कर शारीरिक क्लेश के भी कर्तव्य–कर्मों का त्याग कर दे, ऐसा राजस त्याग करके वह त्याग के फल को नहीं पाता।

सात्त्विक त्याग के लक्षण

और हे अर्जुन! जो शास्त्र विहित कर्म करना कर्तव्य है –ऐसे भाव से आसक्ति और फल का त्याग कर के जो कर्म किया जाता है उसे सात्त्विक त्याग माना गया है।

सात्त्विक त्यागी के लक्षण

जो मनुष्य अकुशल कर्म से तो द्वेष नहीं करता और कुशल कर्म करने में अशक्त नहीं होता – वह सत्त्व गुण से युक्त पुरुष ही बुद्धिमान, संशय रहित तथा सच्चा त्यागी है। क्योंकि शरीर धारी किसी भी मनुष्य द्वारा सब कर्मों का सम्पूर्णता से त्याग करना संभव नहीं है, इसीलिए जो कर्मफल त्यागी है वही त्यागी है, ऐसा कहा जाता है। कर्मफल त्याग न करने वालों का तो अच्छा, बुरा और मिश्रित अर्थात् मिला-जुला –ऐसे तीन प्रकार का फल मरने के पश्चात् अवश्य होता है परन्तु कर्मफल के त्याग कर देने वाले मनुष्यों के कर्मों का फल किसी काल में नहीं होता।

चित्र 22.2: श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन की शंकाओं का निवारण

सम्पूर्ण कर्मों के होने में पञ्च हेतुओं का निरूपण

हे महा बाहो! समस्त कर्मों की सिद्धि अर्थात् पूर्ण होने में पांच हेतु कर्मों का अंत करने में सांख्य शास्त्र में बताये गए हैं उनको तू भलीभाँति सुन –

कर्मों की सिद्धि में अधिष्ठान (जिसके आश्रय कर्म किये जाये), कर्त्ता, भिन्न प्रकार के करन (इन्द्रियादिकों तथा अन्य साधनों द्वारा) नाना प्रकार की चेष्टायें तथा पांचवां हेतु देव (शुभाशुभ कर्मों के संस्कार)क्योंकि मनुष्य मन, वाणी और शरीर से शास्त्रानुकूल अथवा शास्त्र के विरुद्ध जो कुछ भी कर्म करता है उसके ये पाँचों कारण हैं।

परन्तु ऐसा होने पर भी जो मनुष्य अशुद्ध बुद्धि होने के कारण उस विषय में अर्थात् कर्मों के होने में केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा को करता समझता है वह मलिन बुद्धि अज्ञानी मनुष्य यथार्थ नहीं समझता है।

कर्त्तापन के अभिमान से रहित कर्म करने वाले की प्रशंसा

जिस मनुष्य के अंतःकरण में 'मैं करता हूँ 'ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि (सांसारिक पदार्थों में और कर्मों में लिपायमान नहीं होती; वह पुरुष सब लोकों को मार कर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बंधता है।

विशेष :-जैसे अग्नि, वायु और जल के द्वारा प्रारब्ध वश किसी प्राणी की हिंसा होती देखने में आये तो भी वह वास्तव में हिंसा नहीं है वैसे ही जिस पुरुष का देह में अभिमान नहीं है और स्वार्थ रहित केवल संसार के हित के लिए ही जिसकी सम्पूर्ण क्रियाएं होती हैं, उस पुरुष के शरीर और इन्द्रियों द्वारा यदि किसी प्राणी की हिंसा होती हुई लोक दृष्टि में देखी जाये तो भी वह हिंसा नहीं है; क्योंकि आसक्ति, स्वार्थ और अहंकार के न होने पर किसी प्राणी की हिंसा हो ही नहीं सकती तथा बिना कर्त्तापन के अभिमान के किया हुआ कर्म वास्तव में अकर्म ही है, इसीलिए वह पुरुष पाप में नहीं बंधता।

तथा हे अर्जुन! ज्ञाता (जानने वाले का नाम) ज्ञान (जिसके द्वारा जाना जाये) और ज्ञेय (जानने में आने वाली वस्तु) यह तीन प्रकार की कर्म-प्रेरणा है और कर्त्ता (कर्म करने वाले का नाम) करन (साधन) तथा क्रिया (करने) यह तीन प्रकार का कर्म-संग्रह है।

उन गुणों की संख्या करने वाले शास्त्र में ज्ञान, कर्म तथा कर्त्तागुणों के भेद से तीन-तीन प्रकार के कहे गए हैं उनको भी तू मुझ से भली भाँति सुन।

सात्त्विक ज्ञान के लक्षण

जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक-पृथक सब भूतों में एक अविनाशी परमात्मा को समभाव से देखता है उस ज्ञान को तू सात्त्विक जान।

राजस ज्ञान के लक्षण

किन्तु जो ज्ञान सम्पूर्ण भूतों में भिन्न-भिन्न प्रकार नाना भावों को अलग-अलग जानता है उस ज्ञान को तू राजस जान।

तामस ज्ञान के लक्षण

परन्तु जो ज्ञान एक कार्य रूप शरीर में ही सम्पूर्ण के सदृश आसक्त है (शरीर को आत्मा मान लेना)बिना युक्ति वाला, तात्त्विक अर्थ से रहित और तुच्छ है –वह ज्ञान तामस कहा गया है।

सात्त्विक कर्म के लक्षण

जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया हुआ और कर्त्तापन के अभिमान से रहित हो तथा फल न चाहने वाले पुरुष द्वारा बिना राग-द्वेष के किया गया हो वह कर्म सात्त्विक कहा गया है।

राजस कर्म के लक्षण

परन्तु जो कर्म अहंकार युक्त पुरुष द्वारा भोगों की इच्छा रखते हुए, बहुत परिश्रम से युक्त होकर किया जाता है वह कर्म राजस कहा गया है।

तामस कर्म के लक्षण

जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसाऔर सामर्थ्य को न विचारकर केवल अज्ञान से किया जाता है वह कर्म तामस कहा गया है।

सात्त्विक कर्त्ता के लक्षण

हे अर्जुन! जो कर्त्ता अनासक्त भाव से, अहंकार से रहित होकर, धैर्य और उत्साह से युक्त तथा कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष-शोकादि विकारों से रहित होकर करता है वह कर्त्ता सात्त्विक कहलाता है।

राजस कर्त्ता के लक्षण

जो कर्त्ता कर्म फल को न चाहने वाला, आसक्ति से युक्त, लोभी है, दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला, अशुद्धाचारी और हर्ष, शोक से लिप्त है –वह राजस कहा गया है।

तामस कर्त्ता के लक्षण

जो कर्त्ता अयुक्त, शिक्षा से रहित, घमंडी, धूर्त, दूसरों की जीविका का नाश करने वाला, शोक करने वाला, आलसी और दीर्घ सूत्रीय है वह तामस कहा गया है।

बुद्धि और धृति के तीन भेदो को बतलाने का निरूपण

हे धनञ्जय! अब तू बुद्धि और धृति को भी गुणों के अनुसार तीन प्रकार की भेद वाली मेरे द्वारा सम्पूर्णता से सुन –

सात्त्विकी बुद्धि के लक्षण

हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृति मार्ग (गृहस्थ में रहते हुए फल और आसक्ति को त्याग कर भगवदर्पण बुद्धि से केवल लोक कल्याण के लिए राजा जनक की भाँति बरतना) और निवृत्ति मार्ग (देहाभिमान को त्याग कर केवल सच्चिदानंद घन परमात्मा में एकीभाव से स्थित हुए श्री शुकदेव जी और सनकादिकों की भाँति संसार से उपराम होकर विचारने का नाम) को कर्तव्यकर्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को, बंधन और मोक्ष को यथार्थ जानती है वह बुद्धि सात्त्विकी है।

राजसी बुद्धि के लक्षण

हे पार्थ! जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म, कर्तव्य और अकर्तव्य, को भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है।

तामसी बुद्धि के लक्षण

और हे अर्जुन! जो तमोगुण से घिरी हुई बुद्धि अधर्म को भी 'यह धर्म है' ऐसा मानती है तथा इसी प्रकार सम्पूर्ण पदार्थों को भी विपरीत मान लेती है वह बुद्धि तामसी है।

सात्त्विकी धृति के लक्षण

हे पार्थ! जिस अव्यभिचारिणी धारण शक्ति(भगवान के विषय के सिवा इन सांसारिक विषयों को धारण करना ही व्यभिचार दोष है, उस दोष से जो रहित है वह अव्यभिचारिणी धारण शक्ति है) से मनुष्य ध्यान योग के द्वारा मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है वह धृति सात्त्विकी है।

राजसी धृति के लक्षण

परन्तु हे पार्थ! फल की इच्छा वाला पुरुष जिस धारणा शक्ति के द्वारा अत्यंत आसक्ति से धर्म, अर्थ और कामों को धारण करता है, वह धारण शक्ति राजसी है।

तामसी धृति के लक्षण

तथा हे पार्थ! दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारण शक्ति द्वारा निद्रा, भय, चिंता और दुःख को तथा उन्मत्तता को भी नहीं छोड़ता अर्थात् धारण किये रहता है, वह धारण शक्ति तामसी है।

सुख के भेद

हे भरत श्रेष्ठ! अब तीन प्रकार के सुख को भी मुझ से सुन –जिस सुख में साधक मनुष्य भजन, ध्यानके अभ्यास से रमण करता है और जिस से दुःख के अंत को प्राप्त हो जाता है –वह आरम्भ काल में यद्यपि विष के तुल्य प्रतीत होता है परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है, वह परमात्म विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न होने वाला सुख सात्त्विक कहा गया है।

राजस सुख के लक्षण

जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है, वह पहले-भोगकाल में अमृत के तुल्य प्रतीत होने पर भी परिणाम में विष के तुल्य है।

तामस सुख के लक्षण

जो सुख भोग काल में तथा परिणाम में भी आत्मा को मोहित करने वाला है –वह (निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न सुख) तामस कहा गया है।

तीनों गुणों के प्रसंग का उपसंहार

पृथ्वी में या आकाश में अथवा देवताओं में अथवा इनके सिवा कहीं भी वह कोई ऐसा सत्त्व नहीं है जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीन गुणों से रहित हो।

वर्ण-धर्म के विषय का आरम्भ

इसीलिए हे परन्तप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के तथा शूद्रों के कर्म, स्वभाव से उत्पन्न गुणों के द्वारा विभक्त किये गए हैं।

ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्मों का वर्णन

अंतःकरणका निग्रह करना, इन्द्रियों का दमन करना, धर्म-पालन के लिए कष्ट सहना, बाहर-भीतर से शुद्ध रहना, दूसरों के अपराधों को क्षमा करना, मन, इन्द्रिय और शरीर को सरल रखना, वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदि में श्रद्धा रखना, परमात्मा के तत्त्व का अनुभव करना –ये सब ही ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्मों का विवरण

शूर-वीरता, तेज, धर्म, चतुरता और युद्ध में भी न भागना, दान देना, स्वामिभाव –ये सब-के सब ही क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।

वैश्य और शूद्र के स्वाभाविक कर्मों का वर्णन

कृषि, गो-पालन, क्रय, विक्रय रूप, सत्य व्यवहार, ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं, सब वर्णों की सेवा करना शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है।

अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्ति रूप सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।अपने स्वाभाविक कर्मों में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार से कर्म करके परम सिद्धि को प्राप्त होता है उस विधि को सुन।

हे अर्जुन! जिस परमेश्वर से सब प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिस से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा कर के मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

स्वधर्म-पालन की प्रशंसा

इसीलिए अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से भी अपना धर्म श्रेष्ठ है क्योंकि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्म रूप कर्म को करताहुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता।

स्वधर्म त्याग का निषेध

अतएव हे कुन्तीपुत्र! दोष युक्त होने पर भी सहज ही स्वधर्म को नहीं त्यागना चाहिए क्यों कि धुंए से अग्नि की भाँति सभी कर्म किसी न किसी दोष से युक्त हैं।

संन्यास योग से परम सिद्धि की प्राप्ति

हे अर्जुन! सर्वत्र आसक्ति रहित बुद्धि वाला, स्पृहा रहित और जीते हुए अंतःकरणवाला पुरुष सांख्य योग द्वारा उस परम नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है जो की ज्ञानयोग की परा निष्ठा है उस नैष्कर्म्य सिद्धि को जिस प्रकार प्राप्त होकर मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त होता है, उसको हे कुन्ती पुत्र! संक्षेप में ही मुझ से सुन -

ज्ञानयोग द्वारा भगवान् प्राप्ति का पात्र बनाने की विधि

विशुद्ध बुद्धि से युक्त, सात्त्विक धारण शक्ति के द्वारा, संयम करके, शब्दादि विषयों का त्याग करके, राग-द्वेष को सर्वथा नष्ट करके, एकांत और शुद्ध देश का सेवन करने वाला, हल्का सात्त्विक और नियमित भोजन करने वाला, मन, वाणी, और शरीर को वश में करने वाला, ध्यान योग के परायण रहने वाला, भली भाँतिदृढ़ वैराग्य का आश्रय लेने वाला तथा अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रह का त्याग करके ममता रहित और शांति युक्त पुरुष सच्चिदानंद घन परमात्मा में अभिन्न भाव से स्थित होने का पात्र होता है।

ज्ञानयोग से परा भक्ति

फिर वह सच्चिदानंद घन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित, प्रसन्न मन वाला योगी न तो किसी के लिए शोक करता है और न कोई आकांक्षा करता है, ऐसा सहमें समभाव वाला योगी प्रभु की परा भक्ति को प्राप्त हो जाता है।

पराभक्ति से भगवत्प्राप्ति

पराभक्ति के द्वारा वह मुझ परमात्मा को, मैं जो हूँ और जितना हूँ, ठीक वैसा का वैसा तत्त्व से जान लेता है तथा उस पराभक्ति से मुझको तत्त्व से जान कर तत्काल ही मुझ में प्रविष्ट होजाता है।

भक्ति सहित निष्काम कर्मयोग से भगवत्प्राप्ति

मेरे परायण हुआ कर्म योगी तो सम्पूर्ण कर्मों को सदा करता हुआ भी मेरी कृपा से सनातन अविनाशी पद को प्राप्त हो जाता है।

भक्ति सहित निष्काम कर्मयोग के अनुष्ठान हेतु भगवान की आज्ञा

इसलिए हे अर्जुन! तू –सब कर्मों को मुझ में अर्पण कर के तथा संबुद्धि रूप योग को अवलंबन कर के मेरे परायण और मुझ में चित्त वाला हो।

भगवच्चिन्तन से उद्धार तथा भगवदाज्ञा के त्याग से अधोगति

उपर्युक्त प्रकार से –

मुझ में चित्त वाला होकर तू मेरी कृपा से समस्त संकटों को अनायास ही पार कर जायेगा और यदि अहंकार के कारण नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जायेगा अर्थात् परमार्थ से भ्रष्ट हो जायेगा।

प्रकृति की प्रबलता के कारण स्वाभाविक कर्मों के त्याग में सामर्थ्य का अभाव बतलाना

और जो तू अहंकार का आश्रय लेकर यह मान रहा है कि 'मैं युद्ध नहीं करूंगा' तेरा यह निश्चय मिथ्या है क्योंकि तेरा स्वभाव तुझे जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा।

और हे कुन्तीपुत्र! जिस कर्म को तू मोह के कारण करना नहीं चाहता, उसको भी तू अपने स्वाभाविक कर्म से बंधा हुआ परवश होकर करेगा।

सबके हृदय में अन्तर्यामी परमात्मा की व्यापकता का कथन

क्योंकि हे अर्जुन! शरीर रूपी यंत्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों के अंतर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण करता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित हैं।

ईश्वर की शरण जाने हेतु आज्ञा और उसका फल

इसलिए हे भारत! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा। उस परमात्मा की ही कृपा से ही तू परम शान्ति और सनातन परम धाम को प्राप्त होगा।

उपदेश का उपसंहार

इस प्रकार गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे कह दिया, अब तू इस रहस्य युक्त ज्ञान को पूर्णतया विचार कर, जैसे चाहता है वैसे ही कर।

पुनः समस्त गीता के सार रूप सर्व गुह्यतम रहस्य को सुनने के लिए आज्ञा

इतना कहने पर अर्जुन का कोई उत्तर न मिलने पर श्रीकृष्ण भगवान फिर बोले की हे अर्जुन! सम्पूर्ण गोपनीयों से भी अति गोपनीय मेरे परम रहस्य युक्त वचन को फिर सुन, तू मेरा अतिशय प्रिय है, इस से परम हित कारक वचन तुझसे कहूँगा। हे अर्जुन! तू मुझ में मन वाला हो, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझको प्रणाम कर, ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यंत प्रिय है।

सर्व धर्मों का आश्रय त्याग कर केवल भगवान की शरण होने की आज्ञा

इसलिए सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सब कर्तव्य-कर्मों को मुझ में त्याग कर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दुंगा, तू शोक मत कर।

चतुर्विध अनाधिकारीयों के प्रति गीता का उपदेश न करने का कथन

हे अर्जुन! इस प्रकार- तुझे यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश किसी भी काल में न तो तप रहित मनुष्य से कहना चाहिए, न भक्ति रहित से और न बिना सुनने वाले से कहना चाहिए तथा जो मुझमें दोष दृष्टि रखता है, उस से तो कभी भी नहीं कहना चाहिए।

गीता जी के प्रचार का महात्म्य

क्योंकि जो पुरुष मुझ में परम प्रेम कर के इस परम रहस्य युक्त गीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा –इसमें कोई संदेह नहीं है।उस से बढ़ कर मेरा प्रिय करने वाला कोई नहीं है; तथा पृथ्वी भर में उस से बढ़ कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्य में होगा भी नहीं।

जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद रूपगीता शास्त्र को पढ़ेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊंगा –ऐसा मेरा मत है।

श्री गीता जी के श्रवण का महात्म्य

जो मनुष्य श्रद्धायुक्त और दोष दृष्टि से रहित होकर इस गीता शास्त्र का श्रवण भी करेगा, वह भी पापों से मुक्त होकर उत्तम कर्म करने वलों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होगा।

हे पार्थ! क्या इस गीता शास्त्र को तूने एकाग्रचित्त से श्रवण किया? और हे धनञ्जय! क्या तेरा अज्ञान जनित मोह नष्ट हो गया?

इस प्रकार भगवान् के पूछने पर अर्जुन बोले –हे अच्युत्! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। अब मैं संशय रहित होकर स्थित हूँ, अत:आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।

श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद की महिमा

इसके पश्चात् संजय बोले –हे राजन! -इस प्रकार मैंने श्री वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अद्भुत रहस्य युक्त रोमांच कारक संवाद को सुना। कैसे कि- श्री व्यास जी की कृपा से दिव्य दृष्टि पाकर मैंने इस परम गोपनीय योग को अर्जुन के प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष सुना है। इसलिए हे राजन! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस रहस्य युक्त, कल्याण कारक और अद्भुत संवाद को पुन: -पुन: स्मरण कर के मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ। तथा हे राजन! श्री हरि के उस अत्यंत विलक्षण रूप को भी स्मरण कर के मेरे चित्त में महान आश्चर्य होता है और मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद के प्रभाव का कथन

हे राजन! विशेष क्या कहूं – जहां योगेश्वर भगवान् कृष्ण हैं और जहाँ गांडीव –धनुषधारी अर्जुन हैं वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है –ऐसा मेरा मत है।

इति श्री गीता मोक्ष संन्यास योग नामक अष्टादश अध्याय

हरी ॐ तत् सत–हरी ॐ तत् सत–हरी ॐ तत् सत

श्री मदभगवद्गीता के सारगर्भित एवं सर्वप्रिय श्लोक काव्यानुवाद सहित

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥गीता 2/23 ॥

काट नहीं सकता शस्त्र इसे जला नहीं सकती अग्नि इसे।
गला नहीं सकता जल इसे सुखा नहीं सकता वायु इसे ।1।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वाभविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥गीता 2/20 ॥

आत्मा जन्मती नहीं मरती नहीं न होकर फिर होती नहीं।
नित्य सनातन पुरातन यही शरीर मरता यह मरती नहीं।2।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥गीता 2/22 ॥

त्याग कर वस्त्र पुरातन पाता मनुष्य नवीन जैसे ।
पाता जीवात्मा नया तन त्याग कर पहले को वैसे ।3।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥गीता 2/27 ॥

कटु सत्य है मृत्यु सबकी कटु सत्य है जन्म सबका ।
कछु नहीं उपाय जिसका फिर शोक किस बात का ।4।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥गीता 2/47 ॥

कर्म करने में अधिकार तेरा फल में किंचित नहीं।
हेतु न बन कर्मफल का निठ्ठलापन कतई नहीं। 5।

यदा यदा हि धर्मस्य
ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य
तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां
विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय
सम्भवामि युगे युगे ॥गीता 4/7-8 ॥

होती है भारत! जब जब धर्म की अधोगति।
उत्थान होता अधर्म का प्रकट होता हूँ तभी तभी।6।
साधुओं की रक्षा के लिए दुष्टों के विनाश हेतु ।
अवतार लेता युग युग में धर्म स्थापना हेतु। 7।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥गीता 6/34 ॥

चंचल है जिद्दी है बलशाली है यह मन कृष्ण।
रोकना इसे वायु सदृश मानता हूँ कठिन कृष्ण ।8।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ गीता 15/7 ॥

मेरा ही सनातन अंश है इस देह में यह जीवात्मा।
प्रकृति स्थित मन इंद्रियों को आकर्षित करे जीवात्मा।9।

सर्वधर्मान्परित्यज्य
मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।गीता 18/66 ।।

कर्तव्य कर्म छोड़ सभी मेरी शरण में आ जा पार्थ ।
मुक्त करके सभी पापों से मोक्ष तुझे दूंगा पार्थ ।10।

आरती भगवद्गीता

(गीता प्रेस गोरखपुर)

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते
हरी-हिय –कमल –विहारिणि, सुन्दर सुपुनीते।।**जय०**।।

कर्म-सुकर्म –प्रकाशिनि, कामासाक्तिहरा।
तत्त्वज्ञान-विकाशिनि, विद्या ब्रह्म परा।।**जय०**।।

निश्छल-भक्ति –विधायिनि, निर्मल, मलहारी।
शरन –रहस्य –प्रदायिनि, सब विधि सुखकारी।।**जय०**।।

राग –द्वेष-विदारणि, कारिणि मोद, सदा।
भाव-भय-हारिणि, तारिणि परमानन्द प्रदा।।**जय०**।।

आसुर –भाव- विनाशिनि, नाशिनि तम-रजनी।
दैवी सद्गुन दायिनि, हरी –रसिका सजनी।।**जय०**।।

समता, त्याग सिखावनि, हरी-मुख की बानी।
सकल शास्त्र की स्वामिनि, श्रुतियों की रानी।।**जय०**।।

दया-सुधा बरसावनि मातु! कृपा कीजै।
हरी-पद-प्रेम दान कर अपनो कर लीजै।।**जय०**।।

इति श्री गीता -ज्ञान -सुधा

जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा

लेखक का पूर्ण परिचय

लेखक	:राम रक्षपाल शर्मा भारद्वाज
प्रेरणा स्रोत	: कमला शर्मा भारद्वाज (धर्म पत्नी)
जन्म स्थान-	: ग्राम –रावली कलां –जिला गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत
जन्म तिथि	: -१९ जनवरी १९३९
पिता –	: श्री छोटे लाल शर्मा भारद्वाज
माता श्री	: श्रीमती रामप्यारी भारद्वाज
व्यवसाय	: पूर्व सहायक इंजीनियर सिंचाई विभाग उत्तर प्रदेश –भारत
अभिरूचियाँ	:साहित्य-लेखन, आध्यात्मिक रचनाएं . ज्ञान प्रबोधनी, तमसो मा ज्योतिर्गमय, समागत पत्रिकाओं में रचनाएं एवं आध्यात्मिक साधना

जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय श्री कृष्णा जय